बाहुबली प्राकृत विद्यापीठ

राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन एवं संशोधन संस्थान

(मैसूर विश्वविद्यानिलय से शोधकार्य के लिए मान्यता प्राप्त)

श्रीधवलतीर्थम्, श्रवणबेलगोला–573135(कर्नाटक)

प्राकृत पत्राचार पाठ्यक्रम

Prakrit Correspondence Courses

प्राकृत डिप्लोमा

पठन–सामग्री

READING MATERIAL

BAHUBALI PRAKRIT VIDYAPEETH

National Institute of Prakrit Studies and Research

Shree Dhaval Teertham, Shravanabelagola. 573135.(KARNATAKA)

E-mail : mynipsar@yahoo.co.in

बाहुबली प्राकृत विद्यापीठ(रजि.)
राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन एवं संशोधन संस्थान

(मैसूर विश्वविद्यालय से शोधकार्य के लिए मान्यता प्राप्त)

श्रीधवलतीर्थम् श्रवणबेलगोला - 573 135 (कर्नाटक)

संस्थापक अध्यक्ष

परमपूज्य जगद्गुरु कर्मयोगी

स्वस्तिश्री चारूकीर्ति भट्टारक महास्वामीजी

निदेशक

डॉ. एम.पी. राजेन्द्रकुमार

प्रभार कुलसचिव एवं व्यख्याता

डॉ. राजेन्द्र पाटील शास्त्री

प्राकृत पत्राचार पाठ्यक्रम

Prakrit Correspondence Courses

पाठ्यक्रम सामग्री - निर्माण समिति

प्रो. प्रेमसुमन् जैन, उदयपुर

डॉ. एम.ए. जयचन्द्र, बेंगलूरु

डॉ. एम.पी. राजेन्द्रकुमार

डॉ. कुसुमा सि.पी., श्रवणबेलगोला

डॉ. राजेन्द्र पाटील शास्त्री, श्रवणबेलगोला

श्री लोककुमार, श्रवणबेलगोला

प्राकृत डिप्लोमा

(पत्राचार पाठ्यक्रम)

पठन–सामग्री
READING MATERIAL

प्रश्नपत्र प्रथम – प्राकृत भाषा, साहित्य एवं धर्म

(**पाठ्यक्रम** SYLLABUS)

(क)	1. प्राकृत भाषा का स्वरूप, व्यापकता एवं महत्त्व	1–4
	2. प्राकृत भाषा के भेद–प्रभेद	
(ख)	प्राकृत साहित्य का परिचय (प्रमुख कवि एवं ग्रंथ)	5
	1. आगम साहित्य की रूपरेखा	
	2. प्राकृत काव्य एवं कथा साहित्य का परिचय	11
(ग)	1. आरामसोहा कथा (1–30 पैरा)	16–27
	2. प्राकृत प्रभु दर्शन (महामस्तकाभिषेक का प्राकृत विवरण) पुस्तक (प्राकृत–हिन्दी) – संलग्न	
(घ)	प्राकृत और जैन धर्म	
	1. प्राकृत के प्रमुख जैन दार्शनिक	28
	2. जैन धर्म के प्रमुख सिद्धांत	32
	3. जैन कला के प्रमुख स्मारक	49–55
	प्रश्नपत्र द्वितीय	56–111

बाहुबली प्राकृत विद्यापीठ

राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन एवं संशोधन संस्थान

स्थापना :

बाहुबली प्राकृत विद्यापीठ एवं उसका राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन एवं संशोधन संस्थान प्रसिद्ध ऐतिहासिक श्रीक्षेत्र श्रवणबेलगोला से पूर्व दिशा की ओर 5 कि.मी. की दूरी पर बेंगलोर मार्ग पर 25–30 एकड़ भूमि पर विस्तृत मनोरम पर्यावरण के बीच स्थापित है। श्री बाहुबली प्राकृत विद्यापीठ के अंतर्गत संचालित यह प्राकृत संस्थान मैसूर विश्वविद्यालय, मैसूर से शोध संस्थान के रूप में मान्यता प्राप्त है। इस प्राकृत संस्थान के अंतर्गत कई विभाग संचालित हैं। जैसे– प्राकृत शिक्षण एवं परीक्षा विभाग, समृद्ध ग्रंथालय, शोध प्रकल्प, पाण्डुलिपि संरक्षण संग्रहालय, प्राकृत धवलात्रय कन्नड़ अनुवाद एवं प्रकाशन विभाग, प्राकृत के मूल ग्रंथों का संपादन एवं प्रकाशन विभाग, धवलेतर प्राकृत कन्नड़ अनुवाद एवं सम्पादन विभाग, प्राकृत हिन्दी एवं प्राकृत–अपभ्रंश विभाग, एन.एम.एम. प्रोजेक्ट, प्राकृत–कन्नड़–हिन्दी–अंग्रेजी शब्दकोश सम्पादन विभाग, प्राकृत कथा विश्वकोश विभाग इत्यादि। इस राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन एवं संशोधन संस्थान की स्थापना 1991 में जगद्‌गुरु कर्मयोगी स्वस्तिश्री चारुकीर्ति भट्‌टारक स्वामीजी के द्वारा हुई थी। इस संस्थान का उद्‌घाटन 2 दिसम्बर, 1993 को भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति महामहिम डॉ. शंकर दयाल शर्मा के द्वारा सम्पन्न हुआ था। इस संस्थान के विकास हेतु परमपूज्य राष्ट्रसंत आचार्य श्री 108 विद्यानन्दजी महाराज, परमपूज्य आचार्य श्री 108 वर्धमानसागरजी महाराज एवं परमपूज्य आचार्यश्री 108 देवनन्दिजी महाराज एवं अन्य प्रमुख मुनि संघों का आर्शीवाद प्राप्त है।

उद्‌देश्य :–

इस बाहुबली प्राकृत विद्यापीठ एवं प्राकृत संस्थान का प्रमुख उद्‌देश्य तीर्थंकरों की दिव्यध्वनि स्वरूप प्राकृत भाषा के मूल ग्रंथों का संरक्षण, संपादन, अनुवाद, प्रकाशन द्वारा प्रचार–प्रसार करना है। तीर्थंकर महावीर के दिव्य उपदेश गणधरों एवं आचार्यों द्वारा लोक–भाषा प्राकृत में संरक्षित किये गये हैं। प्राकृत भाषा भारत की प्राचीनतम भाषा है जिसका संबंध भारत की सभी भाषाओं के साथ जुड़ा हुआ है। अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्त, कर्मसिद्धांत आदि मानवीय मूल्यों और शिल्प, वास्तु, आयुर्वेद, भूगोल, खगोल, ज्योतिष आदि विज्ञानों तथा कलाओं का साहित्य भी प्राकृत भाषा में है। अतः ऐसी प्राकृत भाषा का जनसमुदाय को शिक्षण प्रदान करना और उस के साहित्य को प्रकाश में लाना इस संस्थान का प्रमुख उद्‌देश्य है। इस के लिए संस्थान में विभिन्न प्राकृत पाठ्‌यक्रम और शोध–कार्य की प्रवृत्तियाँ संचालित हैं।

(क) प्राकृत भाषा का स्वरूप, व्यापकता एवं महत्त्व

प्राकृत : भारतीय आर्य भाषा

प्राकृत भारतीय आर्य भाषा परिवार की एक आर्य भाषा है। भाषाविदों ने प्राकृत एवं वैदिक भाषा में ध्वनितत्त्व एवं विकास–प्रक्रिया की दृष्टि से कई समानताएँ परिलक्षित की हैं। अतः ज्ञात होता है कि वैदिक भाषा और प्राकृत के विकसित होने का कोई एक लौकिक समान धरातल रहा है। किसी जनभाषा के समान तत्त्वों पर ही इन दोनों भाषाओं का भवन निर्मित हुआ है, प्रसिद्ध भाषाविद् वाकरनागल ने कहा है– "प्राकृतों का अस्तित्व निश्चित रूप से वैदिक बोलियों के साथ–साथ वर्तमान था, इन्हीं प्राकृतों से परवर्ती साहित्यिक प्राकृतों का विकास हुआ है।"

जनभाषा : मातृभाषा

प्राकृत भाषा अपने जन्म से ही जनसामान्य से जुड़ी हुई है। ध्वन्यात्मक और व्याकरणात्मक सरलीकरण की प्रवृत्ति के कारण प्राकृत भाषा लम्बे समय तक जन सामान्य के बोल–चाल की भाषा रही है। 'महावीर, बुद्ध तथा उनके चारों ओर दूर–दूर तक के विशाल समूह को मातृभाषा के रूप में प्राकृत उपलब्ध हुई। इसीलिए महावीर और बुद्ध ने जनता के सांस्कृतिक उत्थान के लिए प्राकृत भाषा का आश्रय लिया, जिसके परिणाम–स्वरूप दार्शनिक, आध्यात्मिक, सामाजिक आदि विविधताओं से परिपूर्ण आगमिक एवं त्रिपिटक साहित्य के निर्माण की प्रेरणा मिली।

प्राकृत जन–भाषा के रूप में इतनी प्रतिष्ठित थी कि उसे सम्राट अशोक के समय में राज्यभाषा होने का गौरव प्राप्त हुआ है और उसकी यह प्रतिष्ठा सैंकड़ों वर्षों तक आगे बढ़ी है। देश के अन्य नरेशों ने भी प्राकृत में लेख एवं मुद्राएँ अंकित करवायीं। ई. पू. 300 से लेकर 400 ईस्वी तक इन सात सौ वर्षों में लगभग दो हजार लेख प्राकृत में लिखे गये हैं।

अभिव्यक्ति का माध्यम

वैदिक युग में वह लोकभाषा थी। उसमें रूपों की बहुलता एवं सरलीकरण की प्रवृत्ति थी। महावीर युग तक आते–आते प्राकृत ने अपने को इतना समृद्ध और सहज किया कि वह अध्यात्म और सदाचार की भाषा बन सकी। ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में प्रतीत होता है कि प्राकृत भाषा गाँवों की झोपड़ियों से राजमहलों की सभाओं तक समादृत होने लगी थी, अतः वह अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम चुन ली गयी थी। महाकवि हाल ने इसी समय प्राकृत भाषा के प्रतिनिधि कवियों की गाथाओं का गाथाकोश गाथासप्तशती तैयार किया, जो ग्रामीण जीवन और सौन्दर्य–चेतना का प्रतिनिधि ग्रंथ है।

प्राकृत भाषा के इस जनाकर्षण के कारण कालिदास आदि महाकवियों ने अपने नाटक ग्रंथों में प्राकृत भाषा बोलने वाले पात्रों को प्रमुख स्थान दिया। प्राकृत स्वाभाविक वचन–व्यापार का पर्यायवाची शब्द बन गया था। समाज के सभी वर्गों द्वारा स्वीकृत भाषा प्राकृत थी।

काव्यात्मक सौन्दर्य

काव्य की प्रायः सभी विधाओं–महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तककाव्य आदि को प्राकृत भाषा ने समृद्ध किया है। इस साहित्य ने प्राकृत भाषा को लम्बे समय तक

प्रतिष्ठित रखा है। अशोक के शिलालेखों के लेखन–काल से आज तक इन अपने 2300 वर्षों के जीवन काल में प्राकृत भाषा ने अपने काव्यात्मक सौन्दर्य को निरन्तर बनाये रखा है।

अलंकारों के प्रयोग में भी प्राकृत गाथाएँ बेजोड़ हैं। प्रायः सभी अलंकारों के उदाहरण प्राकृत काव्य में प्राप्त हैं। अलंकारशास्त्र के पंडितों ने अपने ग्रंथों में प्राकृत गाथाओं को उनके अर्थ–वैचित्र्य के कारण भी स्थान दिया है।

भारतीय भाषाओं के आदिकाल की जन–भाषा के विकसित होकर प्राकृत स्वतंत्र रूप से विकास को प्राप्त हुई। बोलचाल और साहित्य के पद पर वह समान रूप से प्रतिष्ठित रही है। उसने देश की चिन्तनधारा, सदाचार और काव्य–जगत् को जीवन्त किया है। अतः प्राकृत भारतीय संस्कृति की संवाहक भाषा है।

वैदिक भाषा और प्राकृत

प्राकृत भाषा के व्याकरण सम्बन्धी नियम स्वतंत्र आधार को लिये हुए हैं तथा जन–भाषा में प्रयोगों की बहुलता को भी उसने सुरक्षित रखा है। प्राकृत ने अपने इन्हीं तत्त्वों के अनुरूप कुछ ऐसे नियम निश्चित कर लिये, जिनसे वह किसी भी भाषा के शब्दों को प्राकृत रूप देकर अपने में सम्मिलित कर सकती है। यही प्राकृत भाषा की सजीवता और सर्वग्राह्यता कही जा सकती है।

२. प्रमुख प्राकृत भाषाएँ, भेद–प्रभेद

महावीर युग से ईसा की दूसरी शताब्दी तक प्रचलित साहित्यिक (द्वितीय स्तरीय) प्राकृत के भाषा प्रयोग एवं काल की दृष्टि से तीन भेद किये जा सकते हैं–

(क) आदि युग

(ख) मध्ययुग और

(ग) अपभ्रंश युग

आदि युग :

महावीर के समय से सम्राट कनिष्क के समय तक जिस प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ वह प्रायः एक–सी थी। उसमें प्राचीन प्रयोगों की बहुलता थी। अतः ई. पू. छठी शताब्दी से ईसा की द्वितीय शताब्दी तक प्राकृत में लिखे गये साहित्य की भाषा को आदि–युग अथवा प्रथम युग की प्राकृत कहा जा सकता है। इस प्राकृत के प्रमुख पांच रूप प्राप्त होते हैं– 1. आर्ष प्राकृत 2. शिलालेखी प्राकृत 3. निया प्राकृत 4. प्राकृत धम्मपद की भाषा और 5. कवि अश्वघोष के नाटकों की प्राकृत।

1. आर्ष प्राकृत–

आगमों की इस आर्ष प्राकृत को पालि और अर्धमागधी नाम से जाना गया है। अतः रचना की दृष्टि से पालि, अर्धमागधी आदि आगमिक प्राकृत को शिलालेखी प्राकृत से प्राचीन स्वीकार किया जा सकता है। इस प्राचीनता और दो महापुरुषों द्वारा प्रयोग किये जाने की दृष्टि से आगमों की भाषा को आर्ष प्राकृत कहना उचित है।

(क) पालि – भगवान् बुद्ध के वचनों का संग्रह जिन ग्रंथों में हुआ है, उन्हें त्रिपिटक कहते हैं। इन ग्रंथों की भाषा को पालि कहा गया है। पालि को प्राकृत भाषा का ही एक प्राचीन रूप स्वीकार किया जाता है। प्राचीन भारतीय भाषाओं को समझने के लिए पालि भाषा का ज्ञान आवश्यक है।

(ख) अर्धमागधी – आर्ष प्राकृत के अन्तर्गत पालि के अतिरिक्त अर्धमागधी और शौरसेनी प्राकृत भी आती है। यह मान्यता है कि महावीर ने अर्धमागधी भाषा में उपदेश दिये थे। उन उपदेशों को अर्धमागधी और शौरसेनी प्राकृत में संकलित कर ग्रंथ रूपों में सुरक्षित किया गया।

प्राचीन आचार्यों ने मगध प्रान्त के आधे भाग में बोली जाने वाली भाषा को अर्धमागधी कहा है। कुछ विद्वान् इस भाषा को अर्धमागधी इसलिए कहते हैं कि इसमें आधे लक्षण मागधी प्राकृत के और आधे अन्य प्राकृत के पाये जाते हैं।

(ग) शौरसेनी – शूरसेन (व्रजमण्डल, मथुरा के आसपास) प्रदेश में प्रयुक्त होने वाली जनभाषा को शौरसेनी प्राकृत के नाम से जाना गया है। अशोक के शिलालेखों में भी इसका प्रयोग है। प्राचीन आचार्यों ने षट्खण्डागम आदि ग्रंथों की रचना शौरसेनी प्राकृत में की है और आगे भी कई शताब्दियों तक इस भाषा में ग्रंथ लिखे जाते रहे हैं।

2. शिलालेखी प्राकृत–

शिलालेखी प्राकृत के प्राचीनतम रूप अशोक के शिलालेखों में प्राप्त होते हैं। ये शिलालेख ई पू. 300 के लगभग देश के विभिन्न भागों में अशोक ने खुदवाये थे।

सम्राट अशोक के बाद लगभग ईसा की चौथी शताब्दी तक प्राकृत में शिलालेख लिखे जाते हैं, जिनकी संख्या लगभग दो हजार है। खारवेल का हाथीगुंफा शिलालेख उदयगिरि एवं खण्डगिरि के शिलालेख तथा आन्ध्र राजाओं के प्राकृत शिलालेख साहित्यिक और इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

3. निया प्राकृत :

प्राकृत भाषा का प्रयोग भारत के पड़ोसी प्रान्तों में भी बढ़ गया था। इस बात का पता निय प्रदेश (चीन, तुर्किस्तान) से प्राप्त लेखों की भाषा से चलता है, जो प्राकृत भाषा से मिलती–जुलती है।

4. धम्मपद की प्राकृत भाषा :

पालि भाषा में लिखा हुआ धम्मपद प्रसिद्ध ग्रन्थ है। किन्तु प्राकृत भाषा में लिखा हुआ एक और धम्मपद भी प्राप्त हुआ है, जिसे बी. एम. बरुआ और एस. मित्रा ने सन् 1921 में कलकत्ता से प्रकाशित किया है। यह खरोष्ठी लिपि में लिखा गया था। इसकी प्राकृत का सम्बन्ध पैशाची आदि प्राकृत से है।

5. अश्वघोष के नाटकों की प्राकृत :

आदि युग की प्राकृत भाषा का प्रतिनिधित्व लगभग प्रथम शताब्दी के नाटककार अश्वघोष के नाटकों की प्राकृत भाषा भी करती है। अर्धमागधी, शौरसेनी और मागधी प्राकृत की विशेषताएँ इन नाटकों में प्राप्त होती हैं।

मध्ययुग

ईसा की दूसरी से छठी शताब्दी तक प्राकृत भाषा का प्रयोग निरन्तर बढ़ता रहा। अतः इसे प्राकृत भाषा और साहित्य का समृद्ध युग कहा जा सकता है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में इस समय प्राकृत का प्रयोग होने लगा था। महाकवि भास ने अपने नाटकों में प्राकृत को प्रमुख स्थान दिया। कालिदास ने पात्रों के अनुसार प्राकृत भाषाओं के प्रयोग को महत्त्व दिया। इसी युग के नाटककार शूद्रक ने विभिन्न प्राकृतों का परिचय कराने के उद्देश्य से मृच्छकटिक प्रकरण की रचना की। यह लोकजीवन का प्रतिनिधि नाटक है, अतः उसमें प्राकृत के प्रयोगों में भी विविधता है।

इसी युग में प्राकृत में कथा, चरित, पुराण एवं महाकाव्य आदि विधाओं में ग्रंथ लिखे गये। उनमें जिस प्राकृत का प्रयोग हुआ उसे सामान्य प्राकृत कहा जा सकता है, क्योंकि तब तक प्राकृत ने एक निश्चित स्वरूप प्राप्त कर लिया था, जो काव्य लेखन के लिए आवश्यक था। प्राकृत के इस साहित्यिक स्वरूप को महाराष्ट्री प्राकृत कहा गया है।

(क) महाराष्ट्री प्राकृत

महाराष्ट्री प्राकृत के वर्ण अधिक कोमल और मधुर प्रतीत होते हैं, अतः इस प्राकृत का काव्य में सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। ईसा की प्रथम शताब्दी से वर्तमान युग तक इस प्राकृत में ग्रंथ लिखे जाते रहे हैं।

(ख) मागधी

मगध प्रदेश की जनबोली को सामान्य तौर पर मागधी प्राकृत कहा गया है। मागधी कुछ समय तक राजभाषा थी, अतः इसका सम्पर्क भारत की कई बोलियों के साथ हुआ। इसीलिए पालि, अर्धमागधी आदि प्राकृतों के विकास में मागधी प्राकृत को मूल माना जाता है।

(ग) पैशाची प्राकृत

भारत के उत्तर–पश्चिम प्रान्तों के कुछ भाग को पैशाच देश कहा जाता था। वहाँ पर विकसित इस जनभाषा को पैशाची प्राकृत कहा गया है। इस भाषा में बृहत्कथा नामक पुस्तक लिखे जाने का उल्लेख है।

प्राकृत ने लगभग 6–7 वीं शताब्दी में अपना जनभाषा अथवा मातृभाषा का स्वरूप अपभ्रंश भाषा को सौंप दिया। यहाँ से प्राकृत भाषा के विकास की तीसरी अवस्था प्रारम्भ हुई।

6. प्राकृत एवं अपभ्रंश

प्राकृत में सरलता की दृष्टि से जो बाधा रह गयी थी, उसे अपभ्रंश भाषा ने दूर करने का प्रयत्न किया। कारकों, विभक्तियों, प्रत्ययों के प्रयोग में अपभ्रंश निरन्तर प्राकृत से सरल होती गयी है।

अपभ्रंश भाषा, प्राकृत और हिन्दी भाषा को परस्पर जोड़ने वाली कड़ी है। वह आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं (राजस्थानी, गुजराती, मराठी आदि) की पूर्ववर्ती अवस्था है। अपभ्रंश भाषा में छठी शताब्दी से 12वीं शताब्दी तक पर्याप्त साहित्य लिखा गया है। अपभ्रंश भाषा का महत्त्व प्राकृत और आधुनिक भारतीय भाषाओं के आपसी सम्बन्ध को जानने के लिए आवश्यक है।

7. प्राकृत और आधुनिक भाषाएँ

भारतीय आधुनिक भाषाओं का जन्म उन विभिन्न लोकभाषाओं से हुआ है, जो प्राकृत व अपभ्रंश से प्रभावित थीं, अतः स्वाभाविक रूप से ये भाषाएँ प्राकृत व अपभ्रंश से कई बातों में समानता रखती हैं।

प्राकृत और मराठी का सम्बन्ध बहुत पुराना है। महाराष्ट्री प्राकृत ने मराठी भाषा के विकास में महत्त्वपूर्ण भमिका निभायी है, अतः दोनों भाषाओं का अध्ययन एक दूसरे के लिए पूरक है। दक्षिण भारत की अन्य भाषाओं में भी प्राकृत के कई शब्द प्राप्त होते हैं।

आधुनिक भाषाओं के विकास क्रम की अंतिम अवस्था हिन्दी भाषा है। हिन्दी का प्राकृत और अपभ्रंश से गहरा सम्बन्ध है, क्योंकि हिन्दी जनभाषा और साहित्य दोनों की

भाषा है। अतः उसने प्राचीन जनभाषा प्राकृत आदि से कई प्रवृत्तियाँ ग्रहण की हैं। प्राकृत के अध्ययन से हिन्दी के कई शब्दों का सही ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

प्राकृत देश की इन सभी भाषाओं से अपना सम्बन्ध कायम रख सकी है। अतः प्राकृत के अध्ययन एवं शिक्षण से देश की विभिन्न भाषाओं के प्रचार–प्रसार को बल मिलता है। देश की अखण्डता और चिन्तन की समन्वयात्मक प्रवृत्ति प्राकृत भाषा के माध्यम से दृढ़ की जा सकती है,

प्राकृत भाषा के पठन–पाठन से प्राकृत एवं अन्य भारतीय भाषाओं का ज्ञान रखने वाले एक ऐसे उत्साही समाज का सृजन होगा जो भारतीय संस्कृति की समन्वयात्मक छवि को उजागर करेगा एवं ग्रंथ–भण्डारों में छिपी देश की अमूल्य सम्पदा को विश्व के सामने प्रकट कर सकेगा।

(ख) प्राकृत साहित्य का परिचय (प्रमुख कवि एवं ग्रंथ)

(i) आगम साहित्य की रूपरेखा :

अर्धमागधी आगम–ग्रन्थों का परिचय

अर्धमागधी आगम साहित्य के ग्रन्थ विभिन्न स्थानों से हिन्दी, गुजराती अनुवाद के साथ प्रकाशित हुए हैं। इन आगम ग्रन्थों का आलोडन व मंथन कर विभिन्न विद्वानों एवं आचार्यों द्वारा समय–समय पर उनकी समीक्षा भी प्रस्तुत की गई है। इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर अर्धमागधी आगम साहित्य का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

अंग–

अर्थ रूप में तीर्थंकर द्वारा प्ररूपित तथा सूत्र रूप में गणधर आचार्यों द्वारा ग्रथित साहित्य अंग वाङ्मय के रूप में जाना जाता है। जैन परम्परा में अंगों की सँख्या बारह स्वीकार की गई है। वर्तमान में दृष्टिवाद अंग ग्रंथ के लुप्त हो जाने के कारण 11 अंग ग्रंथ ही उपलब्ध हैं। इनका संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

1. आचारांग

द्वादशांगी में आचारांग का प्रथम स्थान है। आचारांग निर्युक्ति में आचारांग को अंगों का सार कहा गया है – **अंगाणं किं सारो! आयारो। (गा. 16)** निर्युक्तिकार भद्रबाहु ने लिखा है कि तीर्थंकर भगवान् सर्वप्रथम आचारांग का और उसके पश्चात् शेष अंगों का प्रवर्तन करते हैं। प्रस्तुत आगम दो श्रुतस्कन्धों में विभक्त है। आचारांग पर भद्रबाहु की निर्युक्ति जिनदासगणि की चूर्णि व शीलांकाचार्य की (876 ई.) की वृत्ति भी है। आचारांग के अध्ययन से ही श्रमणधर्म का परिज्ञान होता है।

2. सूत्रकृतांग

सूत्रकृतांग दो श्रुतस्कन्धों में विभक्त एक दार्शनिक ग्रन्थ है। सूत्रकृतांग के सूतगड, सुत्तकड व सूयगड नाम भी प्रचलित हैं। समवायांग में सूत्रकृतांग का परिचय देते हुए लिखा गया है कि इसमें स्वमत, परमत, जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष आदि तत्त्वों का विश्लेषण है एवं नवदीक्षितों के लिए बोध वचन हैं। सूत्रकृतांग एक विशुद्ध दार्शनिक ग्रन्थ है, जिसमें मुख्य रूप से 180 क्रियावादी, 84 अक्रियावादी, 67 अज्ञानवादी एवं 32 विनयवादी मतों की चर्चा करते हुए उनका निरासन किया गया है तथा अन्य मतों का परित्याग कर शुद्ध श्रमणाचार का पालन करने का संदेश दिया गया है।

उस युग की जो दार्शनिक दृष्टियाँ थीं, उनकी जानकारी तो इस आगम से मिलती ही है साथ ही ऐतिहासिक व सांस्कृतिक दृष्टि से भी यह ग्रन्थ हमारी अनुपम धरोहर है।

3. स्थानांग

द्वादशांगी में स्थानांग का तीसरा स्थान है। प्रस्तुत ग्रन्थ में 10 अध्ययन हैं। इस आगम में विषय को प्रधानता न देकर संख्या को प्रधानता दी गई है। प्रत्येक अध्ययन में अध्ययन की संख्यानुक्रम के आधार पर जैन सिद्धान्तानुसार वस्तु–संख्याएँ गिनाते हुए उनका वर्णन किया गया है। जैसे प्रथम अध्ययन में एक आत्मा, एक चरित्र, एक समय, एक दर्शन आदि। इस प्रकार 10वें अध्ययन तक यह वस्तु वर्णन 10 की संख्या तक पहुँचता है। वस्तुतः यह ग्रंथ कोश शैली में है, अतः स्मरण रखने की दृष्टि से बहुत उपयोगी है।

4. समवायांग

समवायांग का द्वादशांगी में चतुर्थ स्थान है। समवायांग वृत्ति में लिखा है कि इसमें जीव–अजीव आदि पदार्थों का समवतार है, अतः इस आगम का नाम समवायो है। स्थानांग के समान समवायांग भी संख्या शैली में रचा गया है, किन्तु इसमें एक से प्रारंभ होकर कोटानुकोटि की संख्या तक के तथ्यों का समवाय के रूप में संकलन है। इस ग्रन्थ में क्रम से पृथ्वी, आकाश, पाताल, तीनों लोकों के जीव आदि समस्त तत्त्वों का द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की दृष्टि से एक से लेकर कोटानुकोटि संख्या तक परिचय दिया गया है। आध्यात्मिक तत्त्वों, तीर्थंकरों, गणधरों, चक्रवर्तियों, बलदेवों और वासुदेवों से सम्बन्धित वर्णनों के साथ भूगोल, खगोल आदि की सामग्री का संकलन भी किया गया है। 72 कलाओं, 18 लिपियों आदि का भी इसमें उल्लेख है। वस्तुतः जैन सिद्धान्त, वस्तु–विज्ञान, व जैन इतिहास की दृष्टि से यह आगम अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

5. व्याख्या प्रज्ञप्ति

द्वादशांगी में व्याख्याप्रज्ञप्ति का पाँचवां स्थान है। प्रश्नोत्तर शैली में लिखे गये इस आगम ग्रन्थ में गौतम गणधर, अन्य शिष्य वर्ग एवं श्रावक–श्राविका आदि द्वारा जिज्ञासु भाव से पूछे गये प्रश्नों के उत्तर भगवान् महावीर ने अपनु श्रीमुख से दिये हैं। इसी कारण सभी प्रकार के ज्ञान–विज्ञान से भरे हुए इस ग्रन्थ को विद्वानों द्वारा शास्त्रराज कहकर सम्बोधित किया गया है। वर्तमान समय में इसमें 41 शतक ही हैं, जो 1925 उद्देशकों में विभक्त हैं। यह ग्रन्थ प्राचीन जैन ज्ञान का विश्वकोश भी कहा जाता है। जनमानस में इस आगम के प्रति विशेष श्रद्धा होने के कारण इसका दूसरा नाम **भगवती सूत्र** अधिक प्रचलित है। जैन दर्शन के प्रमुख सिद्धान्त अनेकान्तवाद, नयवाद, स्याद्वाद व सप्तभंगी का प्रारंभिक स्वरूप भी इस ग्रन्थ में सुरक्षित है।

6. प्रश्नवाकरणसूत्र

द्वादशांगी में प्रश्नव्याकरणसूत्र का दसवाँ स्थान है। इसका शाब्दिक अर्थ है – 'प्रश्नों का व्याकरण' अर्थात् निर्वचन, उत्तर एवं निर्णय। यह आगम दो खण्डों में विभक्त है, जिनमें क्रमशः मन के रोगों का उल्लेख व उनकी चिकित्सा का विवेचन किया गया है। प्रथम खण्ड में उन रोगों के नाम बताये गये हैं – हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य, परिग्रह। द्वितीय खण्ड में इन रोगों की चिकित्सा बताई गई है – अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। आस्रव और संवर तत्त्वों का निरूपण व विश्लेषण इस आगम ग्रन्थ में जिस विस्तार से किया गया है, वह अनूठा व अद्भुत है।

7. ज्ञाताधर्मकथा :

आगम ग्रंथों में कथा–तत्त्व के अध्ययन की दृष्टि से ज्ञाता–धर्मकथा में पर्याप्त सामग्री है। इसमें विभिन्न दृष्टान्त एवं धर्मकथाएँ हैं, जिनके माध्यम से जैन तत्त्व–दर्शन को सहज रूप में जन–मानस तक पहुँचाया गया है। ज्ञाताधर्मकथा आगमिक कथाओं का प्रतिनिधि ग्रंथ है। ज्ञाताधर्मकथा में दृष्टांत और रूपक कथाएँ भी हैं। मयूरों के मण्डों के दृष्टांत से श्रद्धा और संशय से फल को प्रकट किया गया है। दो कछुओं के उदाहरण से संयमी और असंयमी साधक के परिणामों को उपस्थित किया गया है। तूम्बे के दृष्टांत से कर्मवाद को स्पष्ट से कर्मवाद को स्पष्ट किया गया है।

इस ग्रंथ में कुछ रूपक कथाएँ भी हैं। दूसरे अध्ययन की कथा धन्ना सार्थवाह एवं विजय चोर की कथा है। यह आत्मा और शरीर के सम्बन्ध का रूपक है। सातवें अध्ययन की रोहिणी कथा पाँच व्रतों की रक्षा और वृद्धि को रूपक द्वारा प्रस्तुत करती है।

ज्ञाताधर्मकथा पशुकथाओं के लिए भी उद्गम ग्रंथ माना जा सकता है। इस एक ही ग्रंथ में हाथी, अश्व, खरगोश, कछुए, मयूर, मेढक, सियार आदि को कथाओं के पात्रों के रूप में चित्रित किया गया है। मेरुप्रभ हाथी ने अहिंसा का जो उदाहरण प्रस्तुत किया है, वह भारतीय कथा साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है।

8. उपासकदशांग :

उपासकदशांग में महावीर के प्रमुख दश श्रावकों का जीवन–चरित वर्णित है। इन कथाओं में यद्यपि वर्णकों का प्रयोग है। फिर भी प्रत्येक कथा का स्वतंत्र महत्त्व भी है। व्रतों के पालन में अथवा धर्म की आराधना में उपस्थिति होने वोले विघ्नों, समस्याओं का सामना साधक कैसे करे इसको प्रतिपादित करना ही इन कथाओं का मुख्य प्रतिपाद्य है।

9. अन्तकृद्दशासूत्र :

जन्म–मरण की परम्परा का अपनी साधना से अन्त कर देने वाले दस व्यक्तियों की कथाओं का इसमें वर्णन होने से इस ग्रंथ को अन्तकृद्दशांग कहा गया है। इस ग्रंथ में वर्णित कुछ कथाओं का सम्बन्ध अरिष्टनेमि और कृष्ण–वासुदेव के युग से है। गज सुकुमाल की कथा लौकिक कथा के अनुरूप विकसित हुई है। द्वारिका नगरी के विनाश का वर्णन कथा–यात्रा में कौतुहल तत्त्व का प्रेरक है।

10. अनुत्तरोपपातिकदशा :

इस ग्रंथ में उन लोगों की कथाएँ हैं, जिन्होंने तप–साधना के द्वारा अनुत्तर विमानों (देवलोकों) की प्राप्ति की है। कुल 33 कथाएँ हैं, जिनमें से 23 कथाएँ राजकुमारों की हैं, 10 कथाएँ इसमें सामान्य पात्रों की हैं। इनमें धन्यकुमार सार्थवाह–पुत्र की कथा अधिक हृदयग्राही है।

11. विपाकसूत्र :

विपाकसूत्र में कर्म–परिणामों की कथाएँ हैं। पहले स्कन्ध में बुरे कर्मों के दुःखदायी परिणामों को प्रकट करने वाली दश कथाएँ हैं। मृगापुत्र की कथा में कई अवान्तर कथाएँ गुंफित हैं। उद्देश्य की प्रधानता होने से कथातत्त्व अधिक विकसित नहीं है। किन्तु वर्णनों का आकर्षण बना हुआ है। अति–प्राकृत तत्त्वों का समावेश इन कथाओं को लोक से जोड़ता है। व्यापारी, कसाई, पुरोहित, कोतवाल, वैद्य, धीवर, रसोईया, वेश्या आदि से सम्बन्ध होने से इन प्राकृत कथाओं में लोकतत्त्वों का समावेश अधिक हुआ है।

12. दृष्टिवाद

दृष्टिवाद बारहवाँ अंग है। इसमें संसार के सभी दर्शनों एवं नयों का निरूपण किया गया है। दृष्टिवाद अब विलुप्त हो चुका है। श्रुतकेवली भद्रबाहु के स्वर्गवास के पश्चात् दृष्टिवाद का धीरे–धीरे लोप होने लगा तथा देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के स्वर्गवास के बाद यह शब्द रूप से पूर्णतया नष्ट हो गया। अर्थरूप में कुछ अंश बचा रहा।

अन्य आगम ग्रन्थ

औपपातिक एवं रायपसेणिय : औपपातिकसूत्र में भगवान् महावीर की विशेष उपदेश–विधि का निरूपण है। गौतम इन्द्रभूति के प्रश्नों और महावीर के उत्तरों में जो संवादतत्त्व विकसित हुआ है, वह कई कथाओं के लिए आधार प्रदान करता है। राजप्रश्नीयसूत्र में राजा प्रदेशी और केशीश्रवण के बीच हुआ संवाद विशेष महत्त्व का है। इसमें कई कथासूत्र विद्यमान हैं। इस प्रसंग में धातु के व्यापारियों की कथा मनोरंजक है।

उत्तराध्ययनसूत्र

उत्तराध्ययन जैन अर्धमागधी आगम साहित्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आगम ग्रन्थ माना जाता है। इसे महावीर की अन्तिम देशना के रूप में स्वीकार किया गया है। उत्तराध्ययन की विषयवस्तु प्राचीन है। उत्तराध्ययन के छत्तीस अध्ययन हैं, इनमें संक्षेप में प्रायः सभी विषयों से सम्बन्धित विवेचन उपलब्ध है। धर्म, दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि की निर्मल धाराएँ इसमें प्रवाहित हैं। जीव, अजीव, कर्मवाद, षड्द्रव्य, नवतत्त्व, पार्श्वनाथ एवं महावीर की परम्परा प्रभृति सभी विषयों का इसमें समावेश हुआ है। दार्शनिक सिद्धान्तों के साथ–साथ इसमें बहुत सारे कथानकों एवं आख्यानों का भी संकलन हुआ है।

दशवैकालिकसूत्र

मूल आगमों में दशवैकालिक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस सूत्र की रचना आचार्य शय्यंभवसूरि द्वारा अपने नवदीक्षित अल्प आयु वाले शिष्यों के लिए की गई थी। श्रमण जीवन के लिए अनिवार्य आचार से सम्बन्धित नियमों का इस ग्रन्थ में सुन्दर संयोजन किया गया है। इसका उद्देश्य मुमुक्षु साधकों को अल्प समय में ही आवश्यक ज्ञान प्रदान कर उन्हें आत्मकल्याण के मार्ग की साधना के पथ पर आगे बढ़ाना है। दशवैकालिक में दस अध्ययन हैं, जिनमें श्रमण जीवन के आचार–गोचर सम्बन्धी नियमों का प्रतिपादन किया गया है।

शौरसेनी आगम साहित्य

दिगम्बर परम्परा के अनुसार द्वादशांगी का विच्छेद हो गया है, केवल दृष्टिवाद का कुछ अंश शेष है, जिसके आधार पर शौरसेनी प्राकृत में सिद्धान्त ग्रन्थ लिखे गये हैं। षट्खण्डागम और कषायपाहुड की गणना इस परम्परा में आगम ग्रन्थों के रूप में ही की जाती है। इनकी भाषा शौरसेनी प्राकृत है। इन प्रमुख ग्रन्थों के साथ–साथ आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थ एवं शौरसेनी प्राकृत में निबद्ध मूलाचार, भगवती आराधना आदि अन्य प्राचीन ग्रन्थ भी आगम तुल्य माने जाते हैं। उन्हीं के आधार पर शौरसेनी आगम साहित्य के प्रमुख ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

षट्खण्डागम्

वीर निर्वाण के लगभग 683 वर्ष बाद मौखिक रूप से गुरु–शिष्य परम्परा में प्रवाहित आगम ज्ञान राशि धीरे–धीरे विलुप्त होने लगी। द्वादशांगी का थोड़ा अंश

आचार्य धरसेन को स्मरण था। वे चौदह पूर्वों में द्वितीय पूर्व के महाकर्मप्रकृति नामक चतुर्थ पाहुड के विज्ञाता थे। उन्होंने यह सोचकर कि यह श्रुतज्ञान कहीं विलुप्त न हो जाय, अतः महिमानगरी में होने वाले मुनि सम्मेलन को पत्र भेजकर समर्थ साधक भेजने का अनुरोध किया। फलस्वरूप ज्ञान ध्यान में अनुरक्त, प्रज्ञावान पुष्पदंत व भूतबलि नामक दो साधु वहाँ पहुँचे। दोनों शिष्यों ने भक्ति व निष्ठा पूर्वक इस आगम ज्ञान को धारण कर उसके आधार पर सूत्र रचना का कार्य प्ररम्भ कर दिया और आचार्य धरसेन के संरक्षण में षट्खण्डागम की रचना की। इस आगम ग्रन्थ का रचना काल विद्वानों द्वारा लगभग ईसा की प्रथम शताब्दी माना गया है।

षट्खण्डागम के छः खण्ड हैं। प्रथम खण्ड जीवट्ठाणं में आठ अनुयोगद्वार तथा नौ चूलिकाएँ हैं, जिसमें गुणस्थान एवं मार्गणाओं का आश्रय लेकर जीव की नाना अवस्थाओं का निरूपण हुआ है। यह भी चिंतन किया गया है कि कौन जीव किस प्रकार से सम्यग्दर्शन व सम्यक्चारित्र को प्राप्त कर सकता है। द्वितीय खण्ड खुद्दाबंध के 11 अधिकारों में केवल मार्गणास्थानों के अनुसार कर्मबंध करने वाले जीव का वर्णन है। तृतीय खण्ड बंधसामित्तविचय में गुणस्थान व मार्गणास्थान के आधार पर कर्मबंध करने वाले जीव का निरूपण किया गया है। किन कर्मप्रकृतियों के बंध में कौन जीव स्वामी है और कौन जीव स्वामी नहीं है, इस पर भी चिंतन किया गया है। चतुर्थ वेयणाखंड में कृति और वेदना ये दो अनुयोगद्वार हैं। वेदना के कथन की इसमें प्रधानता है। पाँचवें वग्गणाखण्ड के प्रारम्भ में स्पर्श, कर्म एवं प्रकृति नामक तीन अनुयोगद्वारों का प्रतिपादन है। वर्गणाखंड का प्रधान अधिकार बंधनीय है, जिसमें बंध, बन्धक और बन्धनीय इन तीन की मुख्य रूप से प्ररूपणा की गई है। छठे खण्ड महाबन्ध में प्रकृति, प्रदेश, स्थिति एवं अनुभाग बंध का विस्तार से विवेचन है। अपनी विशालता के कारण यह खण्ड पृथक ग्रन्थ भी माना जाता है।

कसायपाहुडं (कषायप्राभृत)

आचार्य धरसेन के समकालीन आचार्य गुणधर हुए हैं। आचार्य गुणधर को द्वादशांगी का कुछ श्रुत स्मरण था। वे पाँचवें ज्ञानप्रवादपूर्व की दशम वस्तु के तीसरे कसायपाहुड के पारगामी थे। इसी आधार पर उन्होंने कषायप्राभृत नामक सिद्धान्त ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ में मुख्य रूप से क्रोधादि कषायों की राग–द्वेष परिणति, उनके प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंध सम्बन्धी विशेषताओं का विवेचन किया गया है। अतः इसका दूसरा नाम पेज्जदोसपाहुड भी प्रचलित है। यह ग्रन्थ 233 गाथा सूत्रों में विरचित है। ये सूत्र अत्यंत संक्षिप्त होते हुए भी गूढ़ार्थ आध्यात्मिक रहस्यों को अपने में समेटे हुए हैं। इस ग्रन्थ में 15 अधिकार हैं–

1. पेज्जदोसविभक्ति
2. स्थितिविभक्ति
3. अनुभागविभक्ति
4. प्रदेशविभक्ति – झीणाझीणस्थित्यन्तिक
5. बन्धक अधिकार
6. वेदक अधिकार
7. उपयोग अधिकार
8. चतुःस्थान अधिकार
9. व्यंजन अधिकार
10. दर्शनमोहोपशमना
11. दर्शनमोहक्षपणा
12. संयमासंयमलब्धि
13. संयमलब्धि अधिकार
14. चारित्रमोहोपशमना
15. चारित्रमोहक्षपणा।

प्रवचनसार

प्रवचनसार की गणना शौरसेनी आगम साहित्य में द्रव्यानुयोग के अन्तर्गत की जाती है। इसके रचियता आचार्य कुन्दकुन्द हैं। यह ग्रन्थ तीन भागों में विभक्त करके लिखा गया है। प्रत्येक भाग के प्रारम्भ में महत्त्वपूर्ण मंगलाचरण की गाथाएँ हैं। वस्तुतः प्रवचनसार एक शास्त्रीय ग्रन्थ के साथ–साथ नव दीक्षित श्रमण हेतु एक व्यवहारिक नियम पुस्तिका भी है, जो आचार्य कुन्दकुन्द की आध्यात्मिक अनुभूति से ही प्रकट हुई है।

समयसार

समयसार एक आध्यात्मिक ग्रन्थ है। इसके रचियता आचार्य कुन्दकुन्द हैं। शुद्ध आत्म–तत्त्व का विवेचन जिस व्यापकता से इसमें हुआ है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। समय की व्याख्या करते हुए ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही कहा है कि जब जीव सम्यग्ज्ञान–दर्शन–चारित्र में स्थित हो, तो उसे स्वसमय जानो तथा जब पुद्गल कर्म–प्रदेशों में स्थित हो, तो उसे परसमय जानो। शुद्धात्म तत्त्व का निरूपण करने वाला यह ग्रन्थ 10 अधिकारों में विभक्त है। इन अधिकारों में क्रमशः शुद्ध–अशुद्धनय, जीव–अजीव, कर्म–कर्त्ता, पाप–पुण्य, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष एवं सर्व विशुद्ध ज्ञान का विवेचन हुआ है।

तिलोयपण्णत्ती

त्रिलोकप्रज्ञप्ति शौरसेनी प्राकृत भाषा में रचित करणानुयोग का प्राचीनतम ग्रन्थ है। धवला टीका में इस ग्रन्थ के अनेक उदाहरण उद्धृत हुए हैं। यह ग्रन्थ 8,000 श्लोक प्रमाण है। ग्रन्थ के अन्त में बताया गया है – **अट्ठसहस्सप्रमाणं तिलोयपण्णतिणामाए** अर्थात् आठ हजार श्लोक प्रमाण इस ग्रन्थ की रचना की गई है। इसके कर्त्ता कषायप्राभृत पर चूर्णिसूत्र के रचयिता आचार्य यतिवृषभ हैं। इस ग्रन्थ में दृष्टिवाद, मूलाचार, परिकर्म, लोकविभाग आदि प्राचीन ग्रन्थों के उल्लेख मिलते हैं। इस ग्रन्थ में त्रिलोक की रचना के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। तीनों लोक के स्वरूप, आकार, प्रकार, विस्तार, क्षेत्रफल और युग–परिवर्तन आदि विषयों का विस्तार से विवेचन हुआ है। यह ग्रन्थ 9 अधिकारों में विभक्त है।

1. सामान्यलोक	2. नरकलोक	3. भवनवासीलोक
4. मनुष्यलोक	5. तिर्यक्लोक	6. व्यन्तरलोक
7. ज्योतिर्लोक	8. देवलोक	9. सिद्धलोक।

इन अधिकारों में मुख्यरूप से जैन भूगोल व खगोल का विस्तार से प्रतिपादन हुआ है।

भगवती आराधना

भगवती आराधना शौरसेनी साहित्य का एक प्राचीन ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का मूल नाम **आराधना** है। किन्तु इसके प्रति श्रद्धा व पूज्य भाव व्यक्त करने की दृष्टि से **भगवती** विशेषण लगाया गया है। ग्रन्थ के अन्त में ग्रन्थकार ने **आराहणा भगवदी** लिखकर आराधना के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है। वर्तमान में यह भगवती आराधना के नाम से ही प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ के रचयिता आचार्य शिवार्य हैं। विद्वानों द्वारा इनका समय लगभग ईसा की तीसरी–चौथी शताब्दी माना जाता है। इस ग्रन्थ में 2166 गाथाएँ हैं, जो 40 अधिकारों में विभक्त हैं। इन गाथाओं में सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र और सम्यक् तप इन चार आराधनाओं का निरूपण हुआ है।

मूलाचार

मूलाचार प्रमुख रूप से श्रमणाचार का प्राचीन ग्रन्थ है। शौरसेनी प्राकृत में रचित इस ग्रन्थ के रचयिता आचार्य वट्टकेर हैं। भाषा व विषय दोनों ही दृष्टियों से यह ग्रन्थ प्राचीन है। इसका रचनाकाल लगभग चतुर्थ शताब्दी माना गया है। इस ग्रन्थ में 12 अधिकार हैं, जिनमें श्रमण–निर्ग्रंथों की आचार संहिता का सुव्यवस्थित, विस्तृत एवं सांगोपांग विवेचन किया गया है। इसकी तुलना आचारांग से की जाती है।

कर्त्तिकेयानुप्रेक्षा

कार्तिकेयानुप्रेक्षा के रचयिता, स्वामी कार्तिकेय हैं। इनके समय को लेकर विद्वान एक मत नहीं हैं। डॉ. ए. एन. उपाध्ये ने इनका समय छठी शताब्दी माना है। इस ग्रन्थ में 489 गाथाएँ हैं, जिनमें चंचल मन एवं विषय–वासनाओं के विरोध के लिए क्रमशः अध्रुव, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्म इन बारह अनुप्रेक्षाओं का विस्तार से निरूपण हुआ है।

(ii) प्राकृत काव्य एवं कथा साहित्य का परिचय

प्राकृत भाषा में काव्य–रचना प्राचीन समय से ही होती रही है। आगम–ग्रंथों एवं शिलालेखों में अनेक काव्य–तत्त्वों का प्रयोग हुआ है। प्राकृत भाषा के कथा–साहित्य एवं चरित ग्रंथों में भी कई काव्यात्मक रचनाएँ भी उपलब्ध हैं। पादलिप्त की **तरंगवतीकथा** तथा विमलसूरि के **पउमचरियं** में कई काव्य–चित्र पाठक का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हैं। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, श्लेष आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

रसमयी प्राकृत काव्य के जो ग्रंथ आज उपलब्ध हैं, उन्हें तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है :– (1) मुक्तक काव्य (2) खण्ड–काव्य एवं (3) महाकाव्य। प्राकृत काव्य के इन तीनों प्रकार के ग्रंथों का परिचय एवं मूल्यांकन प्राकृत साहित्य के इतिहास ग्रंथों में किया गया है। इन ग्रंथों के सम्पादकों ने भी उनके महत्त्व आदि पर प्रकाश डाला है। कुछ प्रमुख प्राकृत काव्य ग्रंथों का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत है।

मुक्तक काव्य :

मुक्तक काव्य में प्रत्येक पद्य रसानुभूति कराने में समर्थ एवं स्वतंत्र होता है। इस दृष्टि से मुक्तक काव्य की रचना भारतीय साहित्य में बहुत पहले से होती रही है। प्राकृत साहित्य में यद्यपि सुभाषित के रूप में कई गाथाएँ विभिन्न ग्रंथों में प्राप्त होती हैं, किन्तु व्यवस्थित मुक्तक कांव्य के रूप में प्राकृत के दो ग्रंथ उल्लेखनीय हैं– (1) गाथासप्तशती एवं (2)वज्जालग्गं।

गाथासप्तशती :– प्राकृत का यह सर्व प्रथम मुक्तककोश है। इसमें अनेक कवि और कवियत्रियों की चुनी हुई सात सौ गाथाओं का संकलन है। यह संकलन लगभग प्रथम शताब्दी में कविवत्सल हाल ने लगभग एक करोड़ गाथाओं में से चुनकर तैयार किया है। यथा–

सत्त सत्ताइं कइवच्छलेण कोडीअ मज्झआरम्मि।
हालेण विरइआणि सालंकाराणं गाहाणं।।– गाथा. 1/3

गाथासप्तशती की गाथाओं की प्रशंसा अनेक प्राचीन कवियों ने की है। बाणभट्ट ने इस ग्रंथ को गाथाकोश कहा है। अधिकतर लोक–जीवन के विविध चित्रों की अभिव्यक्तियाँ इन गाथाओं के द्वारा होती हैं। नायक–नायिकाओं की विशेष भावनाओं और चेष्टाओं का चित्रण भी इस ग्रंथ की गाथाएँ करती हैं।

वज्जालग्गं :– प्राकृत का दूसरा मुक्तक–काव्य वज्जालग्गं है। कवि जयवल्लभ ने इस ग्रंथ का संकलन किया है। इसमें अनेक प्राकृत कवियों की सुभाषित गाथाएँ संकलित हैं। कुल गाथाएँ 795 हैं, जो 96 वज्जाओं में विषय की दृष्टि से विभक्त हैं। यहाँ 'वज्जा' शब्द विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। वज्जा देशी शब्द है, जिसका अर्थ है– अधिकार या प्रस्ताव। एक विषय से सम्बन्धित गाथाएँ एक वज्जा के अन्तर्गत संकलित की गई हैं। जैसे वज्जा नं. 4 का नाम है– 'सज्जणवज्जा'। इसमें कुल 17 गाथाएँ एक साथ हैं, जिनमें सज्जन व्यक्ति के सम्बन्ध में ही कुछ कहा गया है।

इस मुक्तक–काव्य में साहस, उत्साह, नीति, प्रेम, सुगृहणी, षड्ऋतु, कर्मवाद आदि अनेक विषयों से सम्बन्धित गाथाएं हैं। विभिन्न प्रकार के पशु, पुष्प एवं सरोवर, दीपक, वस्त्र आदि उपयोगी वस्तुओं के गुण–दोषों का विवेचन भी इस ग्रंथ में हुआ है। अतः यह काव्य मानव को लोक मंगल की ओर प्रेरित करता है।

खण्डकाव्य :

प्राकृत में कुछ खण्डकाव्य भी उपलब्ध हैं, जिनमें मानव जीवन के किसी एक मार्मिक पक्ष की अनुभूति को पूर्णता के साथ व्यक्त किया गया है। 17वीं शताब्दी के निम्न प्राकृत खण्डकाव्य उपलब्ध हैं।

कंसवहो :– श्रीमद्भागवत के आधार पर मालावर प्रदेश के निवासी श्री रामपाणिवाद ने सन् 1607 के लगभग इस ग्रंथ की रचना की थी। कवि प्राकृत, संस्कृत, और मलयालम के प्रसिद्ध विद्वान् थे। इनकी कई रचनाएँ इन भाषाओं में प्राप्त हैं।

उसाणिरुद्ध :– यह खण्डकाव्य भी रामपाणिवाद द्वारा रचित है। इसमें बाणसुर की कन्या उषा का श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध के साथ विवाह होने की घटना वर्णित है। प्रेम काव्य के रूप में इसका चित्रण हुआ है।

कुम्मापुत्तचरियं :– प्राकृत के चरित ग्रंथों में कुछ ऐसे काव्य हैं, जिन्हें कथानक की दृष्टि से खण्डकाव्य कहा जा सकता है। कुम्मापुत्तचरियं इसी प्रकार का खण्डकाव्य है। लगभग 16वीं शताब्दी में जिनमाणिक्य के शिष्य अनंतहंस ने इस ग्रंथ की रचना की थी। इस ग्रंथ में कुल 198 गाथाएँ प्राप्त हैं। कुम्मापुत्तचरियं में राजा महेन्द्रसिंह और उनकी रानी कूर्मा के पुत्र धर्मदेव के जीवन की कथा वर्णित है।

इस ग्रंथ में दान, शील, तप और भाव–शुद्धि के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है। इसी प्रसंग में कई छोटे–छोटे उदाहरण भी प्रस्तुत किए गये हैं।

महाकाव्य :

महाकाव्य में जीवन की सम्पूर्णता को विभिन्न आयामों द्वारा उद्घाटित किया जाता है। प्राकृत में रसात्मक महाकाव्य कम ही लिये गये हैं। किन्तु जो महाकाव्य उपलब्ध हैं, वे अपनी विशेषताओं के कारण महाकाव्य के क्षेत्र में अपनी अमिट छाप छोड़ते हैं। ऐसे प्राकृत के उत्कृष्ट महाकाव्य हैं : –

(1) सेतुबन्ध (2) गउडवहो (3) लीलावईकहा एवं (4) द्वयाश्रयकाव्य।

प्राकृत के ये चारों महाकाव्य ईसा की 4–5 वीं शताब्दी से 12 वीं शताब्दी तक की प्राकृत कविता का प्रतिनिधित्व करते हैं।

सेतुबन्ध (रावणवहो) :– प्राकृत का यह प्रथम शास्त्रीय महाकाव्य है। इसमें राम कथा के एक अंश को प्रौढ़ काव्यात्मक शैली में महाकवि प्रवरसेन ने प्रस्तुत किया है। वाल्मीकि रामायण के युद्धकाण्ड की कथावस्तु सेतुबन्ध के कथानक का आधार है।

इस महाकाव्य में मुख्य रूप से दो घटनाएँ हैं– सेतुबन्ध और रावणबध। अतः इन दोनों प्रमुख घटनाओं के आधार पर इसका नाम 'सेतुबन्ध' अथवा 'रावणवहो' प्रचलित हुआ है। टीकाकार रामदास भूपति ने इसे 'रामसेतु' भी कहा है।

गउडवहो :– प्राकृत के महाकाव्यों में 'गउडवहो' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। लगभग ई. सन् 760 में महाकवि वाक्पतिराज ने गउडवहो की रचना की थी। वाक्पतिराज कन्नौज के राजा यशोवर्मा के आश्रय में रहते थे। उन्होंने इस काव्य में यशोवर्मा के द्वारा गौड़देश (मगध) के किसी राजा के वध किये जाने का वर्णन किया है। इसीलिए इसका नाम 'गउड़वध' रखा है। इस दृष्टि से यह एक ऐतिहासिक काव्य भी है।

लीलावईकहा :– लगभग 9वीं शताब्दी में महाकवि कोऊहल ने 'लीलावईकहा' नामक महाकाव्य की रचना की हैं। यह प्राकृत का महाकाव्य एवं कथा–ग्रंथ दोनों हैं। इस ग्रंथ में प्रतिष्ठान नगर के राजा सातवाहन एवं सिंहलद्वीप की राजकुमारी लीलावई के प्रेम की कथा वर्णित है। बीच में कई अवान्तर कथाएँ हैं। यह महाकाव्य काव्यशास्त्रीय दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। इसमें उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, समासोक्ति आदि अलंकारों का व्यापक प्रयोग है।

इन महाकाव्यों के अतिरिक्त प्राकृत में आचार्य हेमचन्द्र द्वारा रचित 'द्वयाश्रयकाव्य' भी प्रसिद्ध है। इसमें प्राकृत व्याकरण के नियमों को स्पष्ट किया गया है। कुमारपाल राजा का जीवन भी इस काव्य में वर्णित है।

(iii) प्राकृत कथा साहित्य

प्राकृत में कई कथा–ग्रंथ लिखे गये हैं। उनमें से कुछ गद्य में एवं कुछ पद्य में हैं। पद्य में लिखे गये प्राकृत के कथा–काव्य काव्यात्मिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हैं।

प्राकृत साहित्य में सबसे अधिक कथा–ग्रंथ लिखे गये हैं। कथाओं की शैली और विविध रूपता के लिए प्राकृत साहित्य प्रसिद्ध है। आगम काल से लेकर वर्तमान युग तक प्राकृत में कथाएँ लिखी जाती रही हैं। अतः यह साहित्य पर्याप्त समृद्ध है।

प्राकृत कथाओं का प्रारम्भ आगम साहित्य में हुआ है, जहाँ संक्षिप्त रूप में कथा का ढांचा प्राप्त होता है। उसके बाद आगम के व्याख्या साहित्य में इन कथाओं को घटनाओं और वर्णनों से पुष्ट किया गया है। ऐसी हजारों कथाएँ इस साहित्य में प्राप्त हैं।

प्राकृत आगमों पर जो व्याख्या साहित्य लिखा गया है, उसमें कई छोटी–छोटी कथाएँ आयी हैं। अतः प्राकृत कथा साहित्य के अध्ययन की दृष्टि से इस व्याख्या साहित्य का भी विशेष महत्त्व है।

आचार्य हरिभद्र ने **दशवैकालिकवृत्ति** और **उपदेशपद** में कई प्रकार की कथाएँ प्रस्तुत की हैं। अतः ये दोनों ग्रंथ भी प्राकृत कथा के आधार ग्रंथ माने जा सकते हैं। टीका साहित्य में नेमिचन्द्रसूरि का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने **उत्तराध्ययन–सुखबोधाटीका** में कई महत्त्वपूर्ण प्राकृत कथाएँ प्रस्तुत की हैं।

स्वतंत्र कथा–ग्रंथ :

तरंगवतीकहा : प्राकृत में प्राचीन समय से स्वतंत्र रूप से भी कथा–ग्रंथ लिखे गये हैं। पादलिप्तसूरि प्रथम कथाकार हैं, जिन्होंने प्राकृत में तरंगवइकहा नामक बड़ा कथाग्रंथ लिखा है। किन्तु दुर्भाग्य से आज वह उपलब्ध नहीं है। उसका संक्षिप्त सार तरंगलोला के नाम से नेमिचन्द्रगणि ने प्रस्तुत किया है।

वसुदेवहिण्डी : यह ग्रंथ विश्व कथा–साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। क्योंकि वसुदेवहिण्डी की कई कथाएँ विश्व में प्रचलित हुई हैं। संघदासगणि ने इस ग्रंथ में वसुदेव के भ्रमण–वृतान्त का वर्णन किया है। प्रसंगवश अनेक अवान्तरकथाएँ भी इसमें आयी हैं। इस ग्रंथ का दूसरा खण्ड धर्मदासगणि के द्वारा रचित माना जाता है, उसका नाम मध्यमखण्ड है। वसुदेवहिण्डी में रामकथा एवं कृष्णकथा के भी कई प्रसंग हैं तथा कुछ लौकिक कथाएँ हैं। इस कारण इस ग्रंथ में चरित, कथा और पुराण इन तीनों तत्त्वों का समावेश हो गया है।

समराइच्चकहा : यह प्राकृत् कथा साहित्य का सशक्त ग्रंथ है। आचार्य हरिभद्रसूरि ने लगभग 8वीं शताब्दी में चित्तौड़ में इस ग्रंथ की रचना की थी। इस ग्रंथ की कथा का मूल आधार अग्निशर्मा एवं गुणसेन के जीवन की घटना है। अपमान से दुःखी होकर अग्निशर्मा प्रतिशोध की भावना मन में लाता है। इस निदान के फल–स्वरूप 9 भवों तक वह गुणसेन के जीव से बदला लेता है। वास्तव में समराइच्चकहा की कथावस्तु सदाचार और दुराचार के संघर्ष की कहानी है। प्रसंगवश इसमें अनेक कथाएं भी गुंथी हुई हैं।

कुवलयमालाकहा : आचार्य हरिभद्र के शिष्य उद्द्योतनसूरि ने ई. 779 में जालौर में कुवलयमालाकहा की रचना की है। ग्रंथ गद्य एवं पद्य दोनों में लिखा गया है। किन्तु इसकी विशिष्ट शैली के कारण इसे प्राकृत का चम्पू ग्रंथ भी कहते हैं। कुवलयमालाकहा की कथावस्तु भी एक नवीनता लिये हुए है। इसमें क्रोध, मान, माया, लोभ और मोह जैसी मानसिक वृत्तियों को पात्र बनाकर उनकी चार जन्मों की कथा कही गयी है।

कहारयणकोस : मध्ययुग में स्वतंत्र कथा ग्रंथों के साथ प्राकृत में कथाओं के संग्रह–ग्रंथ भी लिखे जाने लगे थे। देवभद्रसूरि (गुणचन्द्र) ने ई. 1101 में भड़ौच में कहारयणकोस की रचना की थी। इस ग्रंथ में कुल 50 कथाएँ हैं। गृहस्थ धर्म के विभिन्न पक्षों को इन कथाओं के माध्यम से पुष्ट किया गया है।

कुमारवालपडिबोह : सोमप्रभसूरि ने सन् 1184 में इस ग्रंथ की रचना की थी। इस ग्रंथ में गुजरात के राजा कुमारपालके चरित्र का वर्णन है। किन्तु उसको प्रदान की गयी शिक्षा के दृष्टान्तों के रूप में इस ग्रंथ में कई कथाएँ दी गयी हैं। अतः यह चरित–ग्रंथ न होकर कथा–ग्रंथ बन गया है।

रयणसेहरनिवकहा : जिनहर्षसूरि ने इस ग्रंथ की रचना ई. सन् 1430 में चित्तौड़ में की थी। यह एक प्रेम कथा है। इसमें रत्नशेखर सिंहलद्वीप की राजकुमारी रत्नवती से प्रेम करता है, अनेक कष्ट सहकर उसे प्राप्त करता है। इसमें राजा का मंत्री मतिसागर सहायक होता है। कथा के दूसरे भाग में सात्विक–जीवन की साधना का वर्णन है। पर्व के दिनों में धर्म–साधना करना इस ग्रंथ का प्रमुख स्वर है।

पाइयविन्नाणकहा : श्रीविजयकस्तूरसूरि ने 20वीं शताब्दी में प्राकृत कथा प्रणयन को जीवित रखा है। उन्होंने इस पुस्तक में 55 कथाएँ लिखी हैं। प्राकृत गद्य में लिखी ये कथाएँ लौकिक–जीवन और परम्परा के चित्र को उजागर करती हैं।

रयणवालकहा : श्री चन्दनमुनि प्राकृत के आधुनिक लेखक हैं। उन्होंने इस ग्रंथ में रत्नपाल की कथा को प्राकृत के प्रांज़ल गद्य में प्रस्तुत किया है। इस ग्रंथ को पढ़ने से प्राकृत कथाओं की समृद्ध परम्परा का आभास हो जाता है।

(iv) प्राकृत चरित–ग्रंथ :

प्राकृत गद्य का प्रयोग आगम ग्रंथों और कथा–ग्रंथों के अतिरिक्त प्राकृत के चरित ग्रंथों में भी हुआ है। गद्य–पद्य में मिश्रित रूप से लिखे गये प्राकृत निम्न प्रमुख चरित ग्रंथ हैं–

1. चउप्पनमहापुरिसचरियं
2. जंबुचरियं
3. रयणचूडरायचरियं
4. सिरिपासनाहचरियं
5. महावीरचरियं आदि

चरित साहित्य के ये ग्रंथ प्रायः पौराणिक कथानकों पर आधारित हैं। उन्हीं में से ग्रंथों के नायकों को चयन कर उनके चरितों को विकसित किया गया है।

चउप्पन–महापुरिसचरियं : इन ग्रंथ की रचना लगभग 9वीं शताब्दी (ई. 868) में की गयी थी। शीलंकाचार्य ने इस ग्रंथ में 24 तीर्थंकरों, 12 चक्रवर्तियों, 9 वासुदेवों एवं 9 बलदेवों इन कुल 54 महापुरुषों के जीवन–चरितों को प्रस्तुत किया है। अतः यह ग्रंथ विशालकाय है। ऋषभदेव, पार्श्वनाथ, महावीर, राम, कृष्ण, भरत सभी प्रमुख व्यक्तियों का जीवन इसमें आ गया है।

जंबुचरियं : गुणपाल मुनि ने लगभग 9वीं शताब्दी में इस ग्रंथ की रचना की है। जम्बुस्वामी के वर्तमान जन्म की कथा जितनी मनोरंजक है, उतनी ही उनके पूर्वजन्मों की कथाएँ हैं। इस कारण यह ग्रंथ पर्याप्त सरस है।

रयणचूडरायचरियं : यह ग्रंथ लगभग 12वीं शताब्दी में चन्द्रावती नगरी (आबू) में लिखा गया था। इसके रचयिता नेमिचन्द्रसूरि प्राकृत के प्रसिद्ध कथाकार हैं। इस ग्रंथ में रत्नचूड एवं तिलकसुन्दरी के धार्मिक–जीवन का वर्णन है।

सिरिपासनाहचरियं : इस ग्रंथ की रचना देवभद्रसूरि (गुणचन्द्र) ने ई. 1111 में की थी। इसमें पार्श्वनाथ के जीवन का विस्तार से वर्णन है। पूर्वभवों के प्रसंग में मनुष्य–जीवन की विभिन्न वृत्तियों का इसमें अच्छा चित्रण हुआ है। अवान्तर कथाएँ इस ग्रंथ के कथानक को रोचक बनाती हैं।

महावीरचरियं : ई. सन् 1082 में गुणचन्द्र ने इस ग्रंथ की रचना छत्रावली में की थी। इस ग्रंथ में भगवान् महावीर के जीवन को विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। यह ग्रंथ गद्य और पद्य में लिखा गया है। काव्यात्मक वर्णनों के लिए यह ग्रंथ प्रसिद्ध है।

जिनवाणी सार

जं इच्छसि अप्पणतो, जं च ण इच्छसि अप्पणतो।
तं इच्छ परस्स वि या, इत्तियगं जिणसासणं।।

जो तुम अपने लिए चाहते हो, वही दूसरों के लिए भी चाहो तथा जो तुम अपने लिए नहीं चाहते, वह दूसरों के लिए भी मत चाहो यही जिनशासन का सार है। यही भगवान महावीर की वाणी है।

(ग) १. आरामशोभा-कथा

पाठ—परिचय

आरामसोहाकहा प्राकृत कथा—साहित्य की उपन्यास—शैली की एक लघु—रचना है। उसमें गो—पूजा एवं नाग—पूजा के साक्षात् फलों पर प्रकाश डालते हुए लेखक ने आत्मवाद, पुनर्जन्म एवं पूर्वकृत—कार्यों के फल पर सरस एवं रोचक कथा के माध्यम से सुन्दर प्रकाश डाला है। यह कथा आचार्य हरिभद्रसूरि द्वारा लिखित 'सम्यक्त्वसप्तति' नामक ग्रंथ के विषय—विश्लेषण के प्रसंग में उक्त कृति के टीकाकार आचार्य संघतिलकसूरि द्वारा उदाहरण स्वरूप लिखी गई है। संघतिलकसूरि का विस्तृत परिचय फिलहाल उपलब्ध नहीं है। जो भी जानकारी अभी तक मिल सकी है उसके अनुसार वे रुद्रपल्लीगच्छ के आचार्य गुणशेखरसूरि के शिष्य थे। उनका लेखनकाल सन् 1479 के आस—पास रहा है। उन्होंने हरिभद्रसूरिकृत 70 गाथा—प्रमाण 'सम्यक्त्व—सप्तति' नामक ग्रंथ की विशाल टीका लिखी थी और उदाहरणों के रूप में प्राकृत—भाषा—निबन्ध बीस कथाएँ (अथवा उपन्यासिकाएँ) लिखीं थीं, जिनमें से एक यह 'आरामसोहाकहा' भी है।

1. इहेव जम्बूरुक्खालंकियदीवमज्झट्ठिए अक्खंडछक्खंडमंडिए बहुविहसुहनिवंह निवासे भारहे वासे असेसलच्छिसंनिवेसो अत्थि कुसट्टदेसो। तत्थ पमुइयपक्कीलियलोय मणोहरो उग्गविग्गहुव्व गोरिसुन्दरो सयलधन्नजाईअभिरामो अत्थि बलासओ नाम गामो। जत्थ य चाउद्दिसि जोयणपमाणे भूमिभागे न कयावि रुक्खाइ उग्गइ।

2. इओ य तत्थ चउव्वेयपारगो छक्कम्मसाहगो अग्गिसम्मो नाम माहणो परिवसइ। तस्स सीलाइगुणपत्तरेहा अग्गिसिहा नाम भारिया। ताणं च परमसुहेण भोगे भुंजताणं कमेण जाया एगा दारिया। तीसे 'विज्जुप्पह' त्ति नाम कयं अम्मापियरेहिं—

> ***जीसे लोलविलोयणाण पुरओ नीलुप्पलो किंकरो,***
> ***पुन्नो रत्तिवई मुहस्स वहई निम्मल्ललीलं सया।***
> ***नासावंसपुरो सुअस्स अपडू चंचूपुडो निज्जरा,***
> ***रूवं पिक्खिय अच्छरासुवि धूवं जायंति ढिल्लायरा।। 1।।***

3. तओ कमेण तीसे अट्ठवरिसदेसियाए दिव्ववसा रोगायंकाभिभूया माया कालधम्ममुवगया। तत्तो सा सयलमवि धरवावारं करेइ। उट्ठिऊण पभायसमए विहियगोदोहा कयघरसोहा गोचारणत्थं बाहिं गंतूण मज्जझण्डे उण गोदोहाइ निम्मिय जणयस्य देवपूयाभोयणाइं संपाडिऊण सयं च भुत्तण पुणरवि गोणीओ चारिऊण संझाए घरमागंतूण कयपाओसियकिच्चा खणमित्तं निद्दासुहं सा अणुहवइ। एवं पइदिणं कुणमाणी घरकम्मेहिं कयत्थिया समाणी जणयमन्नया भणइ— 'ताय! अहं घरकम्मुणा अच्चंतं दूमिया, ता पसिय घरणिसंगहं कुणह।'

4. इय तीइ वयणं सोहणं मन्नमाणेण तेण एगा माहणी विसद्दुमसारणी सगहिणी कया। सावि सायसीला आलसुया कुडिला तहेव घरवावारं तीए निवेसिय सयं ण्हाणविलेवणभूसणभोयणाइभोएसु वावडा तणमवि मोडिऊण न दुहा करेइ।

तओ सा विज्जुपहा विज्जुव्व पज्जलंती चिंतेइ— 'अहो! मए जं सुहनिमित्तं जणयाओ कारियं तं निरउव्व दुहहेउयं जायं। ता न छुट्टिज्जई अवेइयस्स दुट्ठकम्मुणो, अवरो उण निमित्तमित्तमेव होई।' जओ—

> ***सव्वो पुव्वकयाणं कम्माणं पावए फलविवागं।***
> ***अवराहेसु गुणेसु य निमित्तमित्तं परो होइ।। 2 ।।***
> ***यस्माच्च येन च यथा च यदा च यच्च,***
> ***यांवच्च यत्र च शुभाशुभमात्मकर्म्म।***

तस्माच्च तेन च तथा च तदा च तच्च,
तावच्च तत्र च कृतान्तवशादुपैति।। 3।।

5. एवं सा अमणदुम्मणा गोसे गावीओ चारिऊण मज्झण्हे अरस–विरसं सीयले लुक्ख मक्खियासयसंकुलं भुत्तुद्धरियं भोयणं भुंजइ एवं दुक्खमणुहवंतीए तीए बारसवरिसा वइक्कंता।

6. अन्नंमि दिणे मज्झण्हे सुरहीसु चरंतीसु गिम्हे उण्हकरतावियाए रुक्खाभावाओ पाओ च्छायावज्जिए सतिणप्पएसे सुवंतीए तीए समीवे एगो भुयंगो आगओ–

जो उण अइरत्तच्छो संचालियजीहजामलो कालो।
उक्कडफुंकाराव भयजणओ सव्वपाणीणं।। 4।।

7. सो य नागकुमाराहिट्ठियतणु माणुसभासाए सुललियपयाए तं जग्गवेइ, तप्पुरओ एवं भणए य–

भयभीओ तुह पासं, समागओ वच्छि! मज्झ पुट्ठीए।
जं एए गारुडिया लग्गा बंधिय गहिस्संति।। 5।।
ता नियए उच्छंगे सुइरं ठविएवि पवरवत्थेणं।
मह रक्खेसु इहत्थे खणमवि तं मा विलंबेसु।। 6।।
नागकुमाराहिट्ठिय–काओ गारुडियमंतदेवीणं।
न खमो आणाभंगं काउं तो रक्ख मंपुत्ति।। 7।।
भयभंतिं मुत्तूणं वच्छे! सम्मं कुणेसु मह वयणं।
ततो सावि दयालू तं नागं ठवइ उच्छंगे।। 8।।

8. तओ तंमि चेव समए करठवियओसहिवलया तप्पिट्ठओ चेव तुरिय–तुरियं समागया गारुडिया, तेहिं पि सा माहणतणया पुट्ठा, 'बाले! एयंमि पहे कोवि गच्छंतो दिट्ठ गरिट्ठो नागो?' तओ सावि पडिभणइ भो नरिंदा! किं मं पुच्छेह? जं अहमित्थ वत्थछाइयगत्ता सुत्ता अहेसि।'

9. तओ ते परुप्परं संलवंति। जइ एयाए बालियाए तारिसो नागो दिट्ठो हुत्थो तो भयवेविरंगो कुरंगीव उत्तट्ठा हुत्था। अओ इत्थ नागओ सो नागो। तयणु ते अग्गओ पिट्ठओ य पलोइय कत्थवि अलहंता हत्थेण हत्थं मलंता दंतेहिं उट्ठसंपुडं खंडंता विच्छायवयणा पडिनियत्तिऊण गया सभवणेसु गारुडिया।

10. ताओ तीए भणिओ सप्पो– 'नीहरसु इत्ताहे, गया ते तुम्ह वेरिया।' सोवि तीए उच्छंगाओ नीहरिऊण नागरूवमुज्झिऊण चलंतकुंडलाहरणं सुररूवं पयडिय पभणेइ– 'वच्छे! वरेसु वरं जं अहं तुहोवयारेण साहसेण य संतुट्ठम्हि।' सावि तं तहारूवं भासुरसरीरं सुरं पिच्छिऊण हरिसभरनिब्भरंगी विन्नवेइ ताय! जइ सच्चं तुट्ठोसि, ता करेसु मच्झुवरिच्छायं, जेणायवेणापरिभूया सुहंसुहेण च्छायाए उपविट्ठा गावीओ चारेमि।'

11. ताओ तेण तियसेण मणंमि वीसंमियं–'अहो! एसा सरल सहावा वराई जं ममाओवि एवं मग्गइ। ता एयाए एयंपि अहिलसियं करेमि' त्ति तीए उवरि कओ आरामो महल्लसालद्दुमफुल्लगंधंधपुप्फंधयगीयसारो च्छायाभिरामो सरसप्फलेहिं पीणेइ जो पाणिगणे सयावि। तत्तो सुरेण तीइ पुरो निवेइयं–पुत्ति! जत्थ जत्थ तुमं वच्चिहिसि तत्थ तत्थ महमाहप्पाओ एस आरामो तए सह गमिही। गेहाइगयाए तुह इच्छाए अत्ताणं संखेविय च्छत्तुव्व उवरि चिट्ठिस्सइ। तुमईए उण संजायपओयणाए आवइकाले अहं सरेयव्वु' त्ति जंपिय गओ सट्ठाणं सो नागकुमारो।

12. सावि तस्सारामस्सामयरससरसाणि फलाणि जहिच्छं भुंजिय विगयच्छुहतण्हा तत्थेव ठिया सयलं दिणं। रयणीए उण गोणीओ वालिऊण पत्ता नियमंदिरं। आरामोवि तीए गिहं च्छाइऊण समंतओ ठिओ जणणीए उण सा वुत्ता– पुत्ति! कुणसु भोयणं, तओ तीए वज्जरियं– 'नत्थि मे अज्ज खुह' त्ति उत्तरं काऊण सा नियसयणीए निद्दासुहमणुहवइ। जाए पच्चूसमए सा गावीओ गहिय तहेव गयारण्णं आरामोवि तप्पिट्ठीए गओ। एवं कुव्वंतीए तीए अइक्कंताणि कइवइदिणाइं।

13. एगया मज्झण्हे सुहप्पसुत्ताए सिरिपडिलपुराहिवो चउरंगबलकलिओ विजयजत्ताए पडिनियत्तो जियसत्तु नाम राया आगओ तत्थ। तस्सारामस्स रमणिज्जयाए अक्खित्तचित्तो मंतिं खंधावारनिवासत्थ माइसइ। नियासणं च चारुचूयतरुतले ठाविय सयमुवविसइ। सिन्नंपि तस्स चउद्दिसिंपि आवासेइ। अविइ–

तरलतरंगवलच्छा बज्झंति समंतओ य तरुमूले।
कविकालं विज्जंति पल्लणज्जुया य साहासु।। 9।।
बज्झंति निविडथुडपायवेसु मयमत्तदंतिपंतीओ।
वसहकरहाइवाहण परंपराओ ठविज्जंति।। 10।।

14. तम्मि य समएसिन्नकोलाहलेण विज्जुपहा विगयनिद्दा समाणी उट्ठिऊण करहाइपलोयणुत्तट्ठाओ गावीओ दुरंगयाओ पलोइय तासिं वालणट्ठा तुरियतुरियं रायाइलोयस्स पिक्खंतस्सवि पहाविया। तीए समं च करभतुरियाइसमेओ आरामोवि पत्थिओ। तओ ससंभंतो राया सपरियणा उट्ठिओ, अहो किमेयमच्छरियं ति पुच्छइ मंतिं, सोवि जोडिय–करसंपुडो रायं विन्नवेइ–देव! अहमेवं वियक्केमि, जइओ पएसाओ विगयनिद्दामुद्दा उट्ठिऊण करसंपुडेणं नयणे चमढंती उट्ठित्ता पहाविया एसा बाला। इमीए सद्धिं आरामोवि, ता माहप्पमेयमेईए चेव संभाविज्जइ। एसा देवंगणा वि न संभाविज्जइ, निमेसुम्मेसभावेण नूणमेसा माणुसी।

15. तओ रण्णा वुत्तं– 'मंतिराय! एयं मे समीवमाणेह।' मन्तिणावि धाविऊण सद्दो कओ। सावि तस्सद्दस्सवणेण आरामसहिया तत्थेव ठिया। तओ 'एहि' त्ति मंतिणा वुत्ता। सा पडिभणइ–'मम गावीओ दूरं गयाओ।' तओ मंतिणा नियअस्सवारे पेसिऊण आणावियाओ गावीओ। सावि आरामकलिया रायसयासमाणीया। राया वि तीए सव्वमवि चंगमंगमवलोइय 'कुमारि' त्ति निच्छीय साणुराओ मंतिसंमुहमवलोएइ। तेणावि रण्णो मणोभिप्पायं नाऊण वज्जरिया। 'विज्जुपहा! मवलोएइ। तेणावि रण्णो मणोभिप्पायं नाऊण वज्जरिया। 'विज्जुपहा!'

नमिरनरेसरसेहरअमंदमयरंदवासियकमग्गं।
रज्जसिरिइ सव्वक्की होऊण इमं वरं वरसु।। 11।।

16. तओ तीस साहियं–'नाहं सवसा तिु जणणिजणयाणमायत्ता।' तओ मंतिणा उत्तं– 'को ते पिया ? कत्थ वसइ ? तीए वि संलत्तं–इत्थेव गामे अग्गिसम्मो माहणो परिवसइ।' तओ मंति तत्थ गमणाय रण्णा आइट्ठो। सोवि गामे गंतूण तस्स घरे परिट्ठो। तेणावि सागयवयणपुरस्सरं आसणे निवेसिऊण भणिओ– 'जं करणिज्जं तं मे पसीय आइसह।'

17. अमच्चेण भणियं– 'तुम्हं' जइ का वि कन्नगा अत्थि, ता दिज्जउ अम्ह सामिणो।' तेणावि 'दिन्न' त्ति पडिस्सुयं, जं अम्ह जीवियमवि देवस्स संतियं किं पुण कन्नग त्ति ?' तओ अमच्चेण भणियं– 'तुमं पायमवधारेसुं देवस्स पासे।' सोवि य रायसमीवं गंतूण दिन्नासीवयणो, मंतिणा बाहरियं वुत्तं, तो रण्णा सहत्थदिन्नासणे उवविट्ठो, भूवइणा वि कालविलंबमसहमाणेण गंधव्वविवाहेण सा परिणीया। पुव्विल्लयं नामं परावत्तिऊण 'आरामहोहं' ति तीए नामं कयं। माहणस्स वि दुवालस गामे दाऊण

पणइणिं चारामसोहं हत्थिखंधं आरोविऊण सनयरं पइ पत्थिओ पत्थिवो पमोयमुव्वहंतो–

कप्पलइव्व इमीए लंभेण निवो कयत्थमप्पाणं।
मन्नइ अहवा वंछियलाहाओ को न तूसेइ।। 12।।

सिंगारतरंगतरंगिणीइ दिव्वापाणुभावकलियाए।
किं चुज्जं भूवइणो हरियं हिययं तया तीए।। 13।।

18. तओ मंचाइमंचकलियं निवेसियकालागुरुकुंदुरुक्कतुरुक्क धूवमघमघंतघडियं उब्भामियधयवडालोयं उल्लासियवंदणमालं तियचउक्क चच्चरचउम्मुहपयट्टियअउव्वनाडयं बहुठाणठवियपुण्णकलसं वण्णिज्जंतो आरामसोहाइसयसहयसहाचुज्जविलोयणुप्फुल्ल–विलोयणनलिणेहिं नरनारी गणेहिं, पणइणीकलिओ पाडलिपुरं पविट्ठो महाविभूइए महाराओ। सावि पुढो पासाए ठाविया, आरामो वि तीए पासायमावरिय समंतओ ठिओ दिव्वाणुभावेण। राया वि परिहरियासेसवावारो तीइ समं भोए भुंजुंतो दोगुंदुगसुरेवि अवमन्नंतो निमेसमित्तं व कालमवक्कमइ।

19. इओ य आरामसोहा– सवक्किमायाए धूया जाया, कमेण जुव्वणमणुवत्ता, तं तहावत्थं दट्ठूण दुट्ठा तज्जणणी एवं चिंतेइ– 'जइ केणावि पओएण आरामसोहा मरइ, ता राया तीइ गुणक्खित्तचित्तो मम पुत्तिमेयं परिणेइ। तओ य मम मणोरहभूरुहो सहलो होइ' त्ति परिभाविऊण तीए नियदइओ वाहरिओ–'नाह! वच्छाए परिणीयाए बहुकालो वइक्कंतो, अओ तीसे कए किंपि भक्खभुज्जाइयं पेसिउं जुज्जइ, एसावि पिउहरपाहुडेण मणो रंजिज्जइ।'

20. तओ भट्टेण भणियं– 'पिए! तीए न किंपि ऊणय, परमहमेयं वियाणेमि जं कप्पदुमस्स बोरकरीराइ फलपेसणं, वइरागरसस्सकायखंड मंडणं, मेरुस्स सिलायलेहिं दिढयरणं, पज्जोयणस्स खज्जोयपोयउवमाण करणमणुचियं होइ। तहा तीए अम्हाण पाहुडपेसणं, परमेस विसेसो जं रायलोओ मुहे हत्थं दाऊण उवहसिस्सइ।' तओ तीए पावाए संलत्तं–'नूणं सा नो ऊणा परमम्हाणं निव्वुई होइ।' तओ तीए अग्गहं नाऊण माहणेणवि 'तह' त्ति पडिवन्नं।

21. तओ तीए हरिसियमणाए बहुदव्वसंज्जोएण निम्मिया सिंहकेसरीमोदगा, भाविया य महुरयेण, पक्खित्ता य नवकलसे, तम्मुहं मुद्दिऊण तीए भत्ता विन्नतो–'मा पंथे कोवि पच्चवाओ होए तो तुमं सयं गहिय, वच्चसु।' तओ वेयजडो बंभणो मिंढसिंगंव कुडिलं तीए मणं अमुणंतो तं घडं सिरे करिय जा पत्थिओ ताव तीए भणियं–'एयं पाहुडं आरामसोहाए चेव दाऊण सा भणियव्वा–वच्छे! तुमए चेव एयं भुत्तव्वं, न अन्नस्स दायव्वं, मा मम एयस्स विरूवत्तेण रायलोओ हसउ' त्ति सो वि 'तह' त्ति पडिवज्जिय पत्थिओ।

22. मंदपयपयारेण च वच्चंतो संझाए ठाऊण सयणसमए तं घडं ओसीसए दिंतो कइवईदिणेसु पत्तो पाडलिपुत्तासन्न महल्लवडपायवस्स तले। तत्थ तं घडं उस्सीसए दाऊण सुत्तो। इत्थंतरे तत्थ दिव्वजोगेण कीलणत्थमागएण तेण नागकुमारेण दिट्ठो सो बंभणो, चिंतियं च–'को एस मणुसो ? कलसम्मि य किमत्थि वत्थु ?' त्ति नाणं पउंजिय नाओ सयलोवि तीए पावाए बंभणीए वुत्तंतो– 'अहो! पिच्छह सवत्तिमाउए दुट्ठचिट्ठियं, जं तीए सरलसहावाए एरिसं ववरियं, परं मइ विज्जमाणे मा कयावि इमीए विरूवं होउ' त्ति वीमंसिय तेण विसमोयगे अवहरिअयमयमोयगेहिं भरिओ सो कलसो।

23. तओ सो गोसे सुत्तविउद्धो उट्ठिऊण गओ कमेण रायदुवारं। पडिहारनिवेइओ य रायसगासं गंतूण दिन्नासीसो पाहुडघडं रायवाम पासट्ठियाए समप्पेइ आरामसोहाए। तओ तेण भणिओ राया–'जहा, महाराय! विन्नत्तं वच्छामाउयाए जमेयं पाहुडयं मए जारिसं तारिसं जणणीनेहेण पेसियं, अओ पुत्तीए चेव भुत्तव्वं, नन्नस्स दायव्वं, जहाहं रायलोयमज्झे न हसणिज्जा होमि, त्ति मणेच्छाणो न धरियव्वो।

24. तओ रण्णा निरिक्खियं देवीए मुहकमलं, तीए वि दासीए सिरंमि दाऊण सभवणे पेसिओ कलसो। माहणो वि कणयरयणवसणदाणेण संतोसिओ रण्णा। सयं अत्थाणाओ उट्ठिऊण गओ देवीए गिहं। तत्थ सुहासणासीणो विन्नत्तो आरामसोहाए राया–

पिययम! करिय पासायं नियनयणे निअह इत्थ कलसंमि।
अवणिज्जइ जह मुद्दा इय सुच्चा भणइ भूवो वि।। 14।।
दइए! मह मणदइए! मा हियए कुणह किंपि कुवियप्पं।
तं चेवम्हपमाणं ता उग्घाडेसु घडमेयं।। 15।।

25. तओ तं घडं उग्घाडंतीए तीए को वि दिव्वो माणुस्सलोय दुल्लहो परिमलो समुल्लसिओ, जेण सयलंपि रायभवणं महमहियं। तो राया महप्पमाणे मोयगे दट्ठूण परितुट्ठो भुंजंतो य तप्पससं कुणेइ। भणइ य–'मए रण्णा वि होऊण एयारिसासरिसमोयगा सायणं कयावि न कयं।' तओ आरामसोहं पइ जंपइ नरवरो–'एयमज्झा इक्किक्कं मोयगं भइणीणं कए पेसह।' तीए वि रायाएसो तहेव कओ, तओ रायलोए तज्जणणीए महई पसंसा जाया–'अहो सा विन्नाणसालिणी, जीए एरिया देवाण वि दुल्लहा मोयगा काऊण पेसिया।' इय तप्पसंसं सोऊणारामसोहा परमं संतोसं गया।

26. एयम्मि समए अग्गिसम्मेण विन्नतो राया– 'देव! पिउहरं पेसह मे पुत्तिगं, जहा माउए मिलिऊण थोवकालेणवि तुम्ह पासमुवेइ। तओ रण्णा सो पडिनिसिद्धो, जओ– 'रायभारियाओ न मत्तंडमंडलमवि पलोइउ लहंति। किं पुण तत्थ गमणं ति' भणिओ भट्टो गओ सगिहं, भारियाए निवेइयं सयलं पि तेण सरूवं। तओ सा पावा वज्जाहयव्व चिंतिउं लग्गा, 'हंत! मह उच्छूपुप्फं व जाओ निप्फलो उवक्कमो। ता नूणं न मणहरो महुरो।'

27. तओ कइवयदिणपज्जंते पुणोवि हालाहलमीसियाणं फीणियाणं करंडयं दाऊण तहेव तीए विसज्जिओ नियदइओ। पुव्वजुत्तीए चेव तेणेव सुरेण हालाहलमवहरियं, तहेव तीसे पसंसा जाया, पुणो वि तइयवेलं कयपच्चयतालउडभावियमंडियाहिं पडिपुण्णं करंडयं दाऊण बंभणो भणिओ तीए– 'वच्छा, संपयमावन्नसत्ता सह चेव आणेयव्वा। जहा इत्थ पढमो पसवो होइ, जइ राया कहमवि न पेसेइ, तओ तए बंभणत्तं दंसणीयंति।'

28. तव्वयणमंगीकाऊण भट्टो मग्गे गच्छंतो सुत्तो वडपायवस्स। हिट्ठा। देवेण वि पुव्वंव अवहडी तालउडो, तओ पुव्व जत्तीयए पुत्तीए प्राहुडं दाउण राया तेण विन्नत्तो–पुत्तिं मम घरे पेसह। तओ तव्वयणं मणयंपि राया जाव न मन्नइ– ताव सो जमजीहसहोयरिं छुरिं उदरोवरि धरिय वाहरइ–'जइ पुत्ति न पेसिस्सहा, ता अप्पघायं करिस्सामि।' तओ राया तन्निच्छयं मुणिऊण महया परिवारेण परियरियं मंतिणा सहारामसोहं पेसेइ।

29. तओ अमुणियतप्पुण्णपगरिसा आरामसोहमागच्छंतिं सुणिय सवत्तिमाया सहरिसा नियमंदिरपिट्ठदेसे महंतयं कूवयं खणाविऊण किंपि पवंचं मणे भाविऊण तम्मज्झगयभूमिहरए नियधूयं ठवेइ। अह समागया आरामसोहा सपरियणा, सवत्तिमाया वि तीए पुरो नियमभिप्पायमप्पयडंती किंकरिव्व कज्जाइं करिंती चिट्ठइ।

30. अह संजाए पसवसमये सुरकुमराणुकारं सा पसूया कुमार। अन्नया विहिवसओ दूरट्ठिए परियणे समीवट्ठियाए सवत्तिमायाए काय चिंतानिमित्तं नीया आरामसोहा पच्छिमदुवारं, सावि तत्थ कूवं पलोइऊण भणइ– 'अम्मो! कया काराविओ ? एस अउव्वो कूवो।' तओ सा परमपिम्ममिव पयडंती साहइ–'वच्छे! तुज्झागमणं नाऊण मए एस कराविओ। मा कया वि दूरओ नीरे आणिज्जमाणे विसाइसंकमो हुज्जा। तओ सा आरामसोहा कोऊहलेण कूवतलं पलोयंतो तोए दुट्ठाए अणुल्ल हिययाए पणुल्लिया अहोमुहा चेव पडिया।

१. आरामशोभा-कथा

1. यहीं पर जम्बू नामक वृक्ष से अलंकृत द्वीप (जम्बूद्वीप) के मध्य में स्थित, अखंड छह खंडों से सुशोभित, विभिन्न प्रकार के सुख–समूहों से निवास–स्थान भारतवर्ष में, सभी प्रकार की लक्ष्मियों से समृद्ध कुशार्त नाम का एक देश था। वहाँ प्रमुदित, क्रीड़ाओं से युक्त लोगों से मनोहर, तेजस्वी क्षत्रिय–जाति में उत्पन्न के समान, शुभ्र एवं सुंदर एवं समस्त धान्यों से अभिराम बलासक नामक ग्राम था। जहाँ चारों दिशाओं में एक योजन प्रमाण भूमि–भाग में कहीं भी किसी भी प्रकार के वृक्ष आदि नहीं उगते थे।

2. उस बलासक ग्राम में चारों वेदों में पारंगत तथा छह कर्मों का साधक अग्निशर्मा नामक एक ब्राम्हण निवास करता था। शीलादि गुणों से अलंकृत अग्निशिखा नाम की उसकी पत्नी थी। उनके परम सौभाग्य से, सुखभोगों के बाद समयानुसार एक पुत्री का जन्म हुआ। माता–पिता ने उसका नाम विद्युत्प्रभा रखा।

गाथा 1 – जिसके सुंदर चंचल नेत्रों के सम्मुख नीलकमल भी किंकर के समान तथा पुर्णमासी का चंद्रमा जिसके मुख की निर्मल लीला को निरंतर धारण करता था, जिसके नासाभाग के सम्मुख शुकपक्षी की चोंच भी अकुशल (अपडू) एवं शोभाहीन प्रतीत होती थी तथा सिसके सौन्दर्य को देखकर अप्सराएँ भी निश्चय ही म्लानमुख हो जाती थीं।

3. तदनंतर क्रमशः विद्युत्यप्रभा के आठ वर्ष के होने पर दैव के वश से रोग आदि से ग्रस्त होने के कारण उसकी माता अग्निशिखा का स्वर्गवास हो गया। इस कारण उसके घर का समस्त कार्यभार उसी पर आ पड़ा। प्रातःकाल उठकर वह गोदोहन से निपटकर घर की सफाई करती (और) गायों को चराने के निमित्त चली जाती थी। मध्यान्ह में पुनः गोदोहन कर पिता के लिए देवपूजा एवं भोजनादि कराकर (बाद में) स्वयं भोजन करती और पुनः गायों को चराकर संध्याकाल घर लौटती, तब प्रादोशिक कृत्यों को करके कुछेक क्षणों के लिए ही सोती थी। इसी प्रकार प्रतिदिन गृहकार्यों को करती हुई तथा उनसे थककर उसने अवसर पाकर अपने पिता से कहा– हे पिता, गृहकार्यों से मैं बहुत ऊब गई हूँ। अतः कृपा कर आप अपना दूसरा विवाह कर लीजिए।

4. अपनी पुत्री विद्युत्प्रभा के सुखद वचन सुनकर उसने प्रसन्नचित होकर विषवृक्ष लता के समान एक ब्राम्हणी के साथ विवाह कर लिया। किन्तु वह स्वभावतया विलासिनी, खाने–पीने की लालची, आलसी एवं कुटिल थी। अतः उसने घर के सभी काम–काज विद्युत्प्रभा पर ही थोप दिये एवं वह स्वयं स्नान, विलेपन, भूषण भोजनादि भोगों में व्यस्त रहने लगी। वह सौतेली माता अन्य कार्यों में अपने शरीर को मोड़ना भी नहीं चाहती थी।

यह सब देख विद्युत्प्रभा बिजली की तरह प्रज्जवलित होती हुई विचार करने लगी–"अरे, मेरे सुखों के निमित्त पिता ने जो कुछ किया है, वह तो नरक के समान दुखों का कारण बन गया। अब अदृश्य इन दुष्ट कर्मों से छुटकारा न मिलेगा, दूसरे तो फिर निमित्त मात्र ही होते हैं।" क्योंकि–

गाथा– "सभी को पूर्वकृत कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है। अपराधों अथवा गुणों में दूसरे लोग तो निमित्त मात्र ही होते हैं।"

गाथा– "जिससे, जिसके द्वारा, जिस प्रकार, जब और जो, जब तक, जहाँ शुभ एवं अशुभ आत्मा के कर्मों का बंध होता है, उससे, उसके द्वारा, उस प्रकार, उस समय, उसे, अपने वहाँ यमराज के वशीभूत हो जाना पड़ता है।"

5. इस प्रकार वह विद्युत्प्रभा अन्यमनस्क (व्याकुल चित्त) हो प्रातःकाल ही गायों को चराकर, मध्यान्ह में रसविहीन, (चलित रस) ठण्डा, रूखा–सूखा, सैकड़ों मक्खियों से व्याप्त, खाने के लिए रखा गया भोजन करती थी एवं इसी प्रकार दुःख का अनुभव करते हुए उसके बारह वर्ष व्यतीत हो गये।

6. अन्य किसी दिन दोपहर के समय सुगंधियुक्त घास पर विचरते–विचरते ग्रीष्मकालीन प्रखर सूर्य–किरणों के संताप से संतप्त, वृक्षों के अभाव में छाया न मिलने के कारण, घास वाले प्रदेश में जब वहाँ सो रही थी, तभी समीप एक भुजंग आया–

गाथा–4 "जिसके नेत्र रक्तवर्ण के थे, जो काला था तथा जिसकी दोनों जीभें चल रही थीं और जो प्रचण्ड फुँकार के शब्द से सभी प्राणियों को भय से आतंकित कर रहा था।"

7. उस सर्प–शरीरधारी नागकुमार देव ने मनुष्य–भाषा में अत्यन्त संतुलित पदों के द्वारा उसे जगाया एवं उससे इस प्रकार बोला–

गाथा–5 "हे वत्से, भयभीत होकर मैं तेरे पास आया हूँ। मेरे पीछे जो ये गारु–डिक (सपेरे) लोग लगे हैं, वे मुझे बाँधकर ले जाएँगे।

गाथा–6 इसलिए तुम मुझे अपनी गोद में शरण दो और शीघ्र ही अपने वस्त्रों से ढंक दो। मेरी यहाँ सुरक्षा करो, इसमें क्षणमात्र भी विलम्ब मत करो।"

गाथा–7 "नागकुमार के शरीरधारी इन गारूडिकों के मंत्र के प्रभाव से दैवी–शक्तियाँ भी उनकी आज्ञा को भंग करके मैं समर्थ नहीं। अतः हे पुत्री, तू मेरी रक्षा कर।

गाथा–8 "निर्भय होकर, वत्से, मेरे कथनानुसार मेरी रक्षा करो।" (ऐसा सुनकर) विद्युत्प्रभा भी करुणार्द्र हो उठी एवं उसने उस नाग को अपनी गोद में छिपा लिया।

8. इसके बाद उसी समय हाथ में औषधिवलय (मंत्र–तंत्र सम्बन्धी कोई गोलाकार जड़ी बूटी) धारण किये हुए उस भुजंग के पीछे–पीछे ही शीघ्रतापूर्वक वे गारुडिक लोग आये और उन्होंने उस ब्राम्हण–पुत्री विद्युत्प्रभा से पूछा–"बाले, इस मार्ग से जाते हुए तुमने किसी महानाग को देखा है?" यह सुनकर उसने उत्तर में कहा– हे राजन्! मुझसे क्यों पूछते हैं ? क्योंकि मैं तो अपने शरीर को वस्त्र से ढँककर सो रही थी।

9. यह उत्तर सुनकर उन्होंने परस्पर में विचार–विमर्श किया कि यदि इस बाला ने वैसा नाग देखा होता तो भयाक्रान्त कुरंगी के समान यहाँ से संत्रस्त होकर भाग खड़ी होती। अतः नाग यहाँ नहीं आया होगा। तदनन्तर वे आगे–पीछे उसे देखते हुए तथा उसे कहीं भी प्राप्त न कर हाथ से हाथ मलते हुए तथा दाँतों से ओंठ काटते हुए म्लानमुख होकर वापिस हुए और अपने–अपने घर चले गये।

10. गारुडिकों के चले जाने के पश्चात् विद्युत्प्रभा ने उस सर्प से कहा–"अब तुम यहाँ से निकलो, तुम्हारे बैरी यहाँ से चले गये हैं।" वह सर्प भी उसकी गोदी से निकलकर अपना नागरूप छोड़कर कुण्डल आदि आभूषणों से सुसज्जित सुर रूप को प्रकट होकर बोला– "वत्से, कोई वरदान माँगो, क्योंकि मैं तुम्हारे उपकार एवं साहस से संतुष्ट हूँ। चिद्युत्प्रभा भी उस नागकुमार के देवरूप एवं भास्कर शरीर को देखकर

हर्ष–प्रपूरित हो विनयपूर्वक बोली– "हे तात, यदि सच–मुच ही आप संतुष्ट हैं, तब मेरे ऊपर (ऐसी) छाया कीजिए, जिससे सूर्य–ताप से बचकर सुखपूर्वक शीतल–छाया में बैठकर गायों को चरा सकूँ।"

11. यह सुनकर देव अपने मन में विस्मित हुआ और विचार करने लगा कि– "अरे! यह बेचारी कैसी सरल स्वभावी है, जो मुझसे भी ऐसा (तुच्छ) वरदान माँगती है। किन्तु कोई बात नहीं, मैं इसकी यह अभिलाषा भी पूर्ण कर देता हूँ और उसने अपने (शरीर के) ऊपर एक ऐसा बगीचा बना दिया, जो महाशालवृक्षों से सुशोभित भ्रमरों से युक्त विकसित पुष्प वाला, ध्वजापताकाओं एवं मनोहर संगीत से युक्त, सुन्दर शीतल छाया वाला और सरस फलों से निरन्तर प्राणि–समूहों को संतुष्ट करता रहे। तत्पश्चात् देव ने उसे निवेदन किया– "पुत्री, जहाँ–जहाँ तु जाओगी, वहाँ–वहाँ महिमाशाली यह बगीचा भी तुम्हारे साथ–साथ चलेगा और घर में रहते समय तुम्हारी इच्छापूर्वक अपने आप छोटा बनकर छाते के समान ही यह तुम्हारे ऊपर छाया रहेगा। किसी भी प्रकार के विपत्ति–काल में मेरा आवश्यकता होने पर तुम मेरे स्मरण करना। मैं तुरन्त चला आऊँगा।" इस प्रकार कहकर वह नागकुमार अपने स्थान को लौट गया।

12. वह विद्युत्प्रभा भी उस बगीचे के अमृत के समान सरस फूलों को यथेच्छ खाती हुई, अपनी भूख–प्यास को शांत करती हुई पूरे दिन वहीं रहने लगी। रात्रि में पुनः गायों को मोड़कर (वापिस लेकर) अपने भवन में लौटती। यह बगीचा भी उसके घर में छाया कर चारों ओर स्थित हो जाता। माता उससे कहती– "पुत्री, भोजन कर लो" यह सुनकर वह निर्भयतापूर्वक कहती है– "आज मुझे भूख नहीं है।" यह कहकर वह अपने बिस्तर पर सुख की नींद सो जाती। प्रातःकाल होने पर वह पुनः गायों को लेती और जंगल में चली जाती। वह बगीचा भी उसके पीछे–पीछे चल देता। इस क्रम से उसने कई दिन व्यतीत कर दिये।

13. किसी एक दिन मध्यान्ह के समय जब वह सुख की नींद सो रही थी, तभी जितशत्रु नामक पाटलिपुत्र नरेश अपनी चतुरंगिणी सेना सहित विजय–यात्रा से लौटते समय वहाँ आया, उस बगीचे की रमणीयता से आकर्षित होकर उसने अपने स्कन्धावार का पड़ाव वहीं डालने के लिए मंत्री को आदेश दिया और अपना आसन सुन्दर आम्रवृक्ष के नीचे जमाकर उस पर स्वयं बैठ गया। उसकी सेना भी चारों दिशाओं में ठहर गयी। और भी (कहा भी गया)–

गाथा–9 चंचल तरंगों के समान वल्ख जाति के घोंड़े पलानों सहित अल्पकाल में ही वृक्षों की मूल वाली शाखाओं से चारों ओर से बाँध दिए गये।

गाथा–10 मदोन्मत्त हाथियों को पंक्तिबद्ध रूप में वृक्षों के बड़े–बड़े ठूँठों से बाँध दिया गया। इसी प्रकार बैल, ऊँट आदि वाहनों को भी क्रमशः बाँध दिया गया।

14. उसी समय सेना के कोलाहल से विद्युत्प्रभा की नींद टूट गई और वह उठ बैठी। ऊँट आदि के देखने से उठकर दूर भागती हुई गायों को देखकर, उन्हें वापिस करने हेतु वह राजा आदि को देखती हुई भी तेज दौड़ने लगी। उसके साथ, हाथी–घोड़े आदि के साथ वह बगीचा भी चलने लगा। तब संत्रस्त हुआ वह राजा भी परिजनों सहित उठा, और– "अरे यह क्या आश्चर्य है!" इस प्रकार मंत्री से पूछने लगा। उसने भी दोनों हाथ जोड़कर राजा से निवेदन किया कि– "हे देव, मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि इस स्थान से सोकर उठी हुई, दोनों हाथों से आँखें मीड़ती हुई जो यह बाला

दौड़ी जा रही है, इसी के साथ यह बगीता भी दौड़ रहा है। अतः इसी के प्रभाव से इस बगीचे के दौड़ने की सम्भावना की जा सकती है। इस कन्या के देवांगना होने की संभावना नहीं की जा सकती, क्योंकि नेत्रों की पलकों के उठने–गिरने से निश्चय ही यह मानुषी है।

15. तब राजा ने कहा– " मंत्रिराज, इसे हमारे समीप ले आओ।" मंत्री ने भी दौड़कर उसे आवाज दी। विद्युत्प्रभा भी उसकी आवाज सुनकर बगीचे सहित वहाँ ठहर गई। तत्पश्चात् "यहाँ आओ" ऐसा मंत्री के द्वारा कहे जाने पर उसने उत्तर दिया– "मेरी गायें दूर भाग गई हैं।" यह सुनकर मंत्री ने अपने घुड़सवारों को भेजकर गायों को लौटवा दिया। विद्युत्प्रभा को भी बगीचे सहित राजा के समीप लाया गया। राजा भी उसे सर्वांग स्वस्थ एवं सुन्दर देखकर तथा उसे "कुमारी है" ऐसा निश्चय कर अनुराग सहित (साभिप्राय) मंत्री की तरफ देखने लगा। मंत्री भी राजा के मन का अभिप्राय जानकर विद्युत्प्रभा से बोला–

गाथा–11 "हे विद्युत्प्रभा! नरेश्वर एवं देवों के दैदीप्यमान मुकुट जिसके आगे क्रम–क्रम से नम्रीभूत रहा करते हैं तथा समस्त राज्यश्री ने जिसका वरण किया है, उस श्रेष्ठ वर का वरण कर सुख भोग करो।"

16. तब विद्युत्प्रभा ने कहा– "इसका उत्तर देना मेरे अधिकार में नहीं है, किन्तु वह मेरे माता–पिता के ही अधीन हैं।" तब मंत्री ने कहा–"तुम्हारे पिता कौन है एवं वे कहाँ निवास करते हैं ?" विद्युत्प्रभा ने उत्तर में कहा– "इसी ग्राम में अग्निशर्मा नामक ब्राम्हण परिवार निवास करता है (मैं उसी कुल की कन्या हूँ)।" तब मंत्री को उसके पास जाने के लिए राजा ने आदेश दिया। मंत्री भी उस बलासक नामक ग्राम में जाकर उस ब्राम्हण–परिवार के घर पहुँचा। ब्राम्हण ने भी स्वागत–वचन आदि के बाद आसन पर बैठाकर उससे कहा– "जो मेरे करने योग्य हो कृपा कर मुझे आदेश दीजिये।"

17. मंत्री ने कहा– "आपकी यदि कोई कन्या हो, तो उसका विवाह हमारे स्वामी (राजा) के साथ कर दीजिये।" ब्राम्हण ने भी "दे दी" कहकर उसका वचन स्वीकार कर लिया और कहा कि "जब हमारा जीवन भी आपके स्वामी के अधिकार में है तब फिर कन्या की तो बात ही क्या ?" यह सुनकर मंत्री ने कहा– "तुम हमारे स्वामी के पास चलो।" वह ब्राम्हण भी मंत्री की बात मानकर राजा के समीप पहुँचा और उसे आशीर्वचन दिया। मंत्री ने समस्त समाचार राजा से कह सुनाया। तब राजा ने स्वयं अपने हाथ से आसन देकर ब्राम्हण को उस पर बैठाया। राजा को समय का विलम्ब सहनीय नहीं हुआ और उसने गन्धर्व–विवाह पद्धति से उसकी कन्या के साथ परिणय कर लिया एवं पूर्वागत नाम में परिवर्तन कर उसका (नया) नाम "आरामशोभा" रख दिया। ब्राम्हण के लिए भी बारह गाँव देकर वह राजा अपनी प्रियतमा "आरामशोभा" को हाथी पर सवार कर अत्यन्त प्रसन्नचित्त होकर अपने नगर की ओर चला।

गाथा–12 इस प्रकार, कल्पलता के समान आरामशोभा को प्राप्त कर राजा ने अपने को कृतार्थ माना, अथवा मनोरथ को पूर्णरूप से प्राप्त कर कौन संतोष को प्राप्त न होगा ?

गाथा–13 दिव्य हाव–भावों से युक्त एवं श्रृंगार रूपी तरंगों वाली उस तरंगिणी विद्युत्प्रभा के मनोहारी हृदय का निर्माण ब्रम्हा ने यदि विशिष्ट तत्त्वों से किया हो, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

18. कालागुरु, कुंदरूक्क (सुगंधित पदार्थ विशेष) एवं तुकिंस्तानी धूप की विस्तृत सुगन्धित से मिश्रित रंगमंच से युक्त, फहराती हुई ध्वजापताकाओं से युक्त, उल्लसित वंदन–मालाओं से युक्त, त्रिमुहानियों, चौमुहानियों पर चर्चरी एवं चौमुखे होने वाले अपूर्व नाटकों से युक्त, बहुत से स्थानों पर स्थित पूर्णकलशों से युक्त, सैकड़ों सहचरों के साथ, बगीचे के आश्चर्यपूर्ण विकसित पुष्पों के समान विकसित कमल नेत्र वाली आरामशोभा के साथ नारी–समूहों के द्वारा प्रशंसित प्रियतमा केसाथ महान विभूतियों से समृद्ध वह महाराज जितशत्रु पाटलिपुत्र में प्रविष्ट हुआ। उस आरामशोभा को एक अलग (विशिष्ट) राजमहल में ठहराया गया। (उसके साथ) वह बगीचा भी संकुचित होकर राजमहल में चारों ओर दिव्य रूप में छा गया। राजा भी अपने समस्त कार्य–व्यापारों को छोड़ उसके साथ (सुखद) भोग भोगता हुआ, श्रेष्ठ जातीय देवों को भी तिरस्कृत करता हुआ, अपना समय क्षण के समान व्यतीत करने लगा।

19. और इधर, आरामशोभा की सौतेली माँ के एक पुत्री उत्पन्न हुई। वह क्रम से युवावस्था को प्राप्त हुई। आरामशोभा को उस सुखद अवस्था में देखकर उस दुष्टा सौतेली माता ने अपने मन में विचार किया– "यदि किसी प्रयोजन से यह आरामशोभा मृत्यु को प्राप्त हो जाए, तब राजा इसके गुणों से आकृष्ट होकर मेरी पुत्री के साथ विवाह कर लेगा। तब मैं भी अपने मनोरथ रूपी वृक्ष को लगाने में पूर्ण सफल हो सकूँगी। ऐसा विचार कर उसने अपने पति से कहा– "हे नाथ, पुत्री (आरामशोभा) के विवाह को हुए बहुत समय व्यतीत हो गया। अतः उसके लिए कुछ मिष्ठान आदि भेज देना योग्य होगा, क्योंकि उस कन्या का भी पितृगह के इस उपहार से चित्त प्रसन्न हो जायेगा।"

20. यह सुनकर उस भट्ट ब्राम्हण ने कहा– "प्रिये, उसे किसी भी वस्तु की कमी नहीं है। यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि जिस प्रकार कल्पवृक्ष के लिए बेर तथा शरीर आदि के फल भेजना, वैराग्यरस वाले (व्यक्ति) के शरीर को अलंकृत करना, मेरू–पर्वत के लिए शिलाखण्डों द्वारा दृढ़ करना, सूर्य के लिए जुगनुओं जैसी कीटों की उपमा देना उचित नहीं होता, ठीक उसी प्रकार विद्युत्प्रभा (आरामशोभा) के लिए हमारा मिष्ठान आदि का भेजना भी योग्य नहीं होगा, बल्कि उससे राजा के लोग मुँह पर हाथ रख–रखकर हँसेंगे।" यह सुनकर उस पाणिनी ने पुनः कहा– "निश्चय ही उसे किसी वस्तु की कमी नहीं है, किन्तु भेंट भेजकर हमें तो तृप्ति होगी ही।" उसका अत्याग्रह देखकर ब्राम्हण ने भी "तथास्तु" कहकर उसे स्वीकार कर लिया।

21. ब्राम्हणी ने हर्षित मन से बहुत प्रकार की सामग्री जुटाकर सिंहकेशरी नामक लड्डू बनाये तथा उसमें विष मिला दिया। उन लड्डुओं को एक नवीन घड़े में रख दिया और उसके मुँह को बाँधकर उसने अपने पति से निवेदन किया। "रास्ते में कोई विघ्न उपस्थित न हो इसलिए इसे लेकर तुम स्वयं जाओ।" तब भेड़ के सीगों के समान कुटिल उसके मन को ठीक से न समझ सकने वाला वह वेद–जड़ ब्राम्हण भी उस घेड़े को अपने सिर पर रखकर जब प्रस्थान करने लगा, तब उस (ब्राम्हणी) ने कहा– "यह भेंट आरामशोभा के हाथों में ही देकर उससे कहना कि वत्से, इसे तुम ही खाना, किसी दूसरे को मत देना। अन्यथा मेरे इस विरूप क्षुद्र मिष्ठान को देखकर राजा के लोग हँसी–मजाक उड़ाएँगे।" वह ब्राम्हण भी "तथास्तु" कहकर वहाँ से चल दिया।

22. धीरे–धीरे चलते–चलते सन्ध्या हो जाने पर वह सो जाता और सोते समय उस घड़े को अपने सिरहाने रख लेता। इस प्रकार कुछ ही दिनों में वह पाटलिपुत्र के निकटवर्ती एक महान् वटवृक्ष के नीचे पहुँचा तथा वहाँ भी वह उस घड़े को सिरहाने रखकर सो गया। इसी बीच देवयोग से वही पूर्वोक्त नागकुमार क्रीड़ा हेतु वहाँ आया एवं उस ब्राम्हण को देखकर विचार करने लगा– ''यह व्यक्ति कौन है, इस कलश में क्या लिये हुए है ?'' उसने अपने विशिष्ट ज्ञान का प्रयोग कर उस पापिनी ब्राम्हणी के मन का समस्त वृत्तान्त जान लिया और मन में सोचने लगा– ''अहो, सौतेली माता के चित्त की दुष्टता तो देखो, जिसने सरल स्वभाव वाली उस आरामशोभा के साथ ऐसा अनर्थकारी कार्य किया है। किन्तु मेरे रहते हुए उसका कुछ भी अनिष्ट नहीं हो सकता।'' ऐसा विचार कर उसने विषमिश्रित लड्डुओं काअपहरण कर उसके स्थान पर कलश को अमृत लड्डुओं से भर दिया।

23. तत्पश्चात् प्रातःकाल होते ही जब उस ब्राम्हण की नींद खुली तब वह उठकर राजदरबार में पहुँचा। उसने प्रतिहारी से निवेदन किया और राजा के समीप पहुँचकर उसे आशीर्वाद दिया तथा उपहार–स्वरूप लड्डुओं से भरा हुआ वह कलश राजा के बाँयी ओर स्थित आरामशोभा को समर्पित कर दिया। उसने राजा से भी कहा– ''महाराज बच्ची (आरामशोभा) की माँ (ब्राम्हणी) ने निवेदन किया है कि ''इस भेंट को मैंने जैसे–तैसे मातृ–प्रेम–वश भेजा है। अतः इसे पुत्री ही खावे, अन्य दूसरे के लिए न दिया जावे, जिससे कि राजदरबारियों के सम्मुख मैं उपहास की पात्र न बनूँ। मेरे इस कथन का कोई बुरा भी न माने।''

24. यह सुनकर राजा ने देवी आरामशोभा के मुखकमल की ओर देखा। उसने भी दासी के सिर पर उस कलश को रखकर उसे अपने महल में भेज दिया। राजा ने ब्राम्हण को स्वर्ण, रत्न एवं वस्त्र के दान से संतुष्ट किया और स्वयं वह (राजा) अपने स्थान से उठकर देवी आरामशोभा के भवन में गया। वहाँ सुखासन पर बैठ गया। देवी आरामशोभा ने (उसी समय राजा से) कहा–

गाथा–14 ''प्रियतम, मेरे ऊपर कृपा करके स्वयं अपने नेत्रों से इस मुद्रित कलश को देखिए। क्योंकि यह अवर्णनीय है।'' यह सुनकर राजा ने भी उत्तर में कहा–

गाथा–15 ''हे प्रिये, मेरे हृदय की रानी, अपने हृदय में किसी भी प्रकार का कुविकल्प मत करो। वही (कलश) हमारे लिए प्रमाण है। अतः अब उस मुद्रित कलश का मुख खोलो।''

25. इसके बाद उस घड़े को जब आरामशोभा ने खोला तब उसमें से मनुष्य–लोक के लिए दुर्लभ दिव्य–सुगन्ध निकली, जिससे समस्त राजभवन सुवासित हो उठा। बहुत बड़े मोदकों को देखकर वह राजा भी संतुष्ट हुआ तथा उन्हें खाकर उसने बड़ी प्रशंसा की और बोला– ''मैंने तो राजा होकर भी ऐसे विशिष्ट स्वाद वाले मोदकों का कभी भी आस्वादन नहीं किया। इनमें से एक–एक लड्डू अपनी बहिनों (अन्य रानियों) को भी भेजो।'' आरामशोभा ने राजा के आदेशानुसार वैसा ही किया। इससे राजदरबार में आरामशोभा की माँ की इस प्रकार प्रशंसा होने लगी– ''अरे वह तो बड़ी ही चतुर है, जिसने देवों के लिए भी अत्यन्त दुर्लभ लड्डू बनाकर भेजे हैं।'' इस प्रकार अपनी माँ की प्रशंसा सुनकर आरामशोभा बहुत भी संतुष्ट हुई।

26. उसी समय अग्निशर्मा ने राजा से विनय की– "देव, मेरी पुत्री को नैहर भेज दीजिये, जिससे कि वह थोड़े समय के लिए भी माता से मिलकर तुम्हारे पास वापिस आ सके।" राजा ने उसे ले जाने से मना कर दिया। उसने स्पष्ट कहा कि– "रानियाँ तो कभी सूर्य का भी दर्शन नहीं कर सकतीं, फिर नैहर जाने की तो बात ही क्या ?" राजा का उत्तर सुनकर वह भट्ट अपने घर लौट गया और समस्त वृत्तान्त अपनी पत्नी को कह सुनाया, यह सुन वह पापिनी वज्राहत की तरह होकर विचार करने लगी। "धिक्कार है, इक्षु–पुष्प के समान ही मेरा उद्यम निष्फल हो गया। प्रतीत होता है कि वह विश निश्चल ही प्राणलेवा न था।"

27. कुछ दिनों के पश्चात् पुनः हलाहल मिश्रित फैनी (नाम की मिठाई) से भरी हुई एक करण्डिका देकर पूर्ववत् उसने अपने पति को आरामशोभा के यहाँ भेजा। पूर्ववत् ही उस नागकुमार देव ने भी हलाहल मिश्रित उन फैनियों का अपहरण कर लिया। पूर्ववत् ही उसकी प्रशंसा भी हुई। इसी प्रकार पुनः तीसरी बार भी "तालपुट" नामक तत्काल प्राणनाशक विष से मिश्रित मिठाई से भरा हुआ एक कलश देकर उस दुष्टा ने ब्राम्हण से कहा "गर्भवती होने के कारण इस बार कन्या को अवश्य ही लेते आना, जिससे उसका प्रथम प्रसव यहीं पर हो। यदि राजा किसी भी प्रकार भेजने को तैयार न हो तब वहीं उसे अपना ब्राम्हण तेज दिखा देना।

28. ब्राम्हणी के वचन स्वीकार करके वह भट्ट चला और चलते–चलते उसी वट–वृक्ष के नीचे सो गया। नागकुमार देव ने भी पूर्ववत् ही तालपुट विष से मिश्रित मिठाई का अपहरण कर लिया। तत्पश्चात् पूर्ववत् ही उसने पुत्री को उपहार देकर राजा से इस प्रकार विनती की– "पुत्री को मेरे घर भेज दीजिए।" राजा ने जब उसकी बात बिलकुल ही न मानी, तब वह यमराज की जिब्हा के समान छुरी को अपने पेट के ऊपर रखकर चिल्लाने लगा– "यदि मेरी पुत्री को न भेजोगे, तब यहीं पर आत्मघात कर लूंगा। "राजा ने उसका निश्चय जानकर विस्तृत परिवार एवं सेवकों के साथ आरामशोभा को विदा कर दिया।

29. तदनन्तर, आरामशोभा के प्रकृष्ट पुण्य–प्रताप को समझे बिना ही उसे आती हुई सुनकर सौतेली माता ने हर्षपर्वूक अपने भवन के पीछे, एक भारी कुँआ खुदवाकर, कुछ प्रपंच की बात मन में रखकर, उसके बीच में बने हुए भूमिगृह में अपनी पुत्री को ठहरा दिया। इसके बाद, सौतेली माता भी सपरिवार आई हुई उस आरामशोभा के सम्मुख अपने अभिप्राय को छिपायी हुई किंकर्तव्यविमूढ़ रहने लगी।

30. आरामशोभा ने देवपुत्र के समान एक कुमार को जन्म दिया। अन्य किसी समय दैववश परिजनों के दूर रहने पर समीप में स्थित सौतेली माता उसे शारीरिक–क्रियाओं की निवृत्ति हेतु घर के पिछले दरवाजे की ओर ले आई।

आरामशोभा ने भी वहाँ खोदे कुँए को देखकर कहा– "माँ, इसे कब खुदवाया है, यह तो बड़ा ही सुन्दर एवं गहरा है ?" यह सुनकर वह अत्यन्त दिखावटी प्रेम प्रदर्शित करती हुई बोली– "वत्से, तेरा आगमन जानकर ही मैंने इसका निर्माण कराया है, जिससे कि पानी लाने के लिए बहुत दूर जाने का कष्ट न उठाना पड़े।" उसी समय उस क्षुद्रहृदया दुष्टचित्ता ने उसे धक्का दे दिया, जिससे कि वह मुँह के बल ही (कुँए में) गिर पड़ी।

✦✦✦

(ड.) प्राकृत और जैनधर्म

(i) प्राकृत के प्रमुख दार्शनिक

प्राकृत के कथा, चरित एवं काव्य ग्रंथों के अतिरिक्त अर्धमागधी एवं शौरसेनी आगमों की परम्परा में कई दार्शनिक ग्रंथ भी लिखे गये हैं। इन ग्रंथों में जैन धर्म, श्रमणाचार, श्रावकाचार एवं दर्शन के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। प्राकृत का यह दार्शनिक साहित्य भारतीय दर्शन और आचार–शास्त्र के तुलनात्मक अध्ययन के लिए महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करता है। इस साहित्य को लिखने वाले प्राकृत के कतिपय प्रमुख दार्शनिक कवियों का संक्षिप्त विवरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

(क) अर्धमागधी–पराम्परा :

अर्धमागधी आगम साहित्य में अंग ग्रंथ, एवं कुछ अंग–बाह्य ग्रंथ, भगवान् महावीर की वाणी के रूप में संकलित ग्रंथ स्वीकार किये गये हैं। कुछ ग्रंथों के कर्ता स्पष्ट रूप में उल्लिखित हैं। ऐसे दार्शनिकों में से निम्न निर्दिष्ट प्रमुख हैं :–

आचार्य शय्यंभव :– अर्धमागधी मूलसूत्रों में दशवैकालिक ग्रंथ श्रमणाचार का प्रमुख ग्रंथ है। इस ग्रंथ के रचयिता शय्यंभव हैं। इनका समय भद्रबाहु और स्थूलभद्र के पूर्व माना गया है। ये ब्राह्मण विद्वान् थे। इन्होंने जैन धर्म की दीक्षा लेकर अपने पुत्र मणग के उद्‌बोधन हेतु दशवैकालिक ग्रंथ की रचना की थी। इस ग्रंथ में जैन साधु के आचरण सम्बन्धी नियमों का विधान है। धर्म–स्वरूप अहिंसा एवं कषाय–विजय आदि के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण चिन्तन शय्यंभव ने प्रस्तुत किया है। वे 23 वर्ष तक आचार्य पद पर रहे। वे विक्रम पूर्व 372 में स्वर्गवास हुए।

देवर्द्धिगणी क्षमा श्रमण :– आगम ज्ञान–धारा को ग्रंथ रूप में लेखन कराने वाले आचार्य देवर्द्धिगणी क्षमा श्रमण विक्रम की पांचवीं शताब्दी में हुए थे। आपने वल्लभी नगरी में वी.नि. सम्व्रत् 980 (वि. सं. 510) में अर्धमागधी आगमों को पुस्तक रूप में लिखाकर उन्हें स्थायित्व प्रदान किया था। आगम–वाचना के समय इन्होंने स्वयं नंदिसूत्र की रचना भी की थी, जो दर्शन एवं न्याय का प्रमुख प्राकृत ग्रंथ है। आचार्य देवर्द्धिगणि को अन्तिम पूर्वधर भी माना जाता है।

आचार्य सिद्धसेन– गुप्त युग में लगभग छठी शताब्दी के विद्वानों में आचार्य सिद्धसेन का प्रमुख स्थान है। इन्होंने प्राकृत में 'सन्मति–तर्क' नामक प्रसिद्ध दार्शनिक ग्रंथ लिखा है। इस ग्रंथ में नय का विशद विवेचन है। अनेकान्तवाद का सुन्दर प्रतिपादन है एवं जैन दर्शन की दृष्टि से ज्ञान–स्वरूप एवं उसके भेदों का निरूपण है। स्याद्वाद एवं अनेकान्तवाद को समझने के लिए प्राकृत का यह प्रामाणिक ग्रंथ है आचार्य सिद्धसेन की इतनी प्रसिद्धि है कि दिगम्बर एवं श्वेताम्बर दोनों परम्पराएँ उन्हें अपना आचार्य स्वीकार करती हैं।

निर्युक्तिकार भद्रबाहु— आगमों की व्याख्या करने वाले आचार्यों में भद्रबाहु (द्वितीय) का प्रमुख स्थान है। इन्होंने दश निर्युक्तियों की प्राकृत में रचना की है। अतः आप निर्युक्तिकार भद्रबाहु के रूप में जाने जाते हैं। वि. सं. 562 के लगभग होने वाले प्रसिद्ध ज्योतिषी वराहमिहिर के ज्येष्ठ भ्राता ये भद्रबाहु थे। अतः इनका समय विक्रम की पांचवी—छठी शताब्दी माना जाता है। इन्होंने प्राकृत गाथाओं में जो दश निर्युक्ति ग्रंथ लिखे हैं, उनमें आवश्यक—निर्युक्ति, आचारांगनिर्युक्ति, दशवैकालिक—निर्युक्ति आदि अतिप्रसिद्ध हैं। पारिभाषिक शब्दों का अर्थ स्पष्ट करने की दृष्टि से और सांस्कृतिक सामग्री के कारण यह साहित्य विशेष महत्त्व का है।

आगम विवेचक जिनभद्रगणी— आगम ग्रंथों पर प्राकृत पद्यों में भाष्य लिखने वाले आगम—विवेचक जिनभद्रगणी लगभग सातवीं सदी के विद्वान् आचार्य हैं। आपने दो भाष्य लिखे हैं— जीतकल्प भाष्य और विशेषावश्यक भाष्य। लगभग 36 सौ गाथाओं वाला विशेषावश्यक भाष्य नय, प्रमाण, स्याद्वाद, कर्म—सिद्धांत ज्ञान—चर्चा, शब्दशास्त्र आदि के विस्तृत विवेचन की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण रचना है। जैन दर्शन और भारतीय अन्य दर्शनों के तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से यह ग्रंथ विद्वानों में समाहित है।

चूर्णिकार आचार्य जिनदास महत्तर— संस्कृत मिश्रित प्राकृत गद्य में जो आगमों की व्याख्या लिखी गयी है, उसे चूर्णि कहते हैं। ऐसी लगभग 20 चूर्णियाँ लिखी गयी हैं। उनमें से प्रमुख आठ चूर्णियों के लेखक आचार्य जिनदास महत्तर हैं। विक्रम की आठवीं शताब्दी के लगभग होने वाले जिनदास, महत्तर ने आवश्यक, दशवैकालिक, नन्दी, अनुयोगद्वार, उत्तराध्ययन, आचारांग, सूत्रकृतांग, निशीथ, एवं व्यवहार ग्रंथों पर जो चूर्णियाँ लिखी हैं, वे भारत के भूगोल, जन—जीवन, प्राचीन इतिहास एवं लौकिक कथाओं की दृष्टि से विशेष महत्त्व की है। प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास इस चूर्णि—साहित्य के अध्ययन के बिना परिपूर्ण नहीं कहा जायेगा।

दार्शनिक हरिभद्र— विक्रम की आठवीं शताब्दी में राजस्थान के चित्तौड़ में जन्मे आचार्य हरिभद्रसूरि प्राकृत साहित्य के शिरोमणि दार्शनिक कवि हैं। आगम साहित्य के वे सर्व प्रथम टीकाकार थे। आवश्यक, दशवैकालिक, नन्दी, अनुयोगद्वार, प्रज्ञापना आदि ग्रंथों पर उन्होंने जो टीकाएँ लिखी हैं, वे भारतीय दर्शन के गूढ़ अर्थों को स्पष्ट करने वाली हैं। आचार्य हरिभद्र ने दर्शन के अतिरिक्त श्रावक धर्म एवं योग—साधना पर भी प्राकृत में ग्रंथ लिखे हैं। सावगधम्म एवं योगसार इसी प्रकार के ग्रंथ हैं। धर्म—दर्शन के साथ—साथ प्राकृत के कथाग्रंथों के भी वे निष्णात लेखक थे। समराइच्चकहा एवं धूर्ताख्यान जैसी अमर—रचनाएँ उन्होंने लिखीं हैं। वास्तव में हरिभद्रसूरि सर्वतोमुखी प्रतिभा के कवि थे।

आचार्य हेमचन्द्र : गुजरात के धन्धुका नगर में वि.सं. 1145 में जन्मे आचार्य हेमचन्द्रसूरि प्राकृत भाषा व साहित्य प्रतिभासम्पन्न विद्वान् थे। उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा भारतीय दर्शन को गरिमा प्रदान की है। हेमचन्द्र द्वारा रचित 'हेम शब्दानुशासन' संस्कृत एवं प्राकृत व्याकरण का अनुपम ग्रंथ है। गुजरात के चालुक्य वंश के इतिहास पर प्रकाश डालने वाली उनकी प्राकृत रचना 'द्वयाश्रयकाव्य' अतिप्रसिद्ध है। काव्य, छन्द, दर्शन, व्याकरण के ज्ञान का अद्भुत संगम आचार्य हेमचन्द्र की रचनाओं में हुआ है।

(ख) शौरसेनी आगम–परम्परा के आचार्य –

आचार्य पुष्पदंत–भूतबली– गुजरात, काठियाबाड़ के आचार्य धरसेन में संचित ज्ञान की धरोहर प्राप्त कर आन्ध्र देश के प्रतिभा एवं चारित्र सम्पन्न दो मुनि पुष्पदंत एवं भूतबली ने शौरसेनी आगम ग्रंथों के आधार ग्रंथ षट्खण्डागम की रचना की थी। इस ग्रंथ का सीधा सम्बन्ध द्वादशांग वाणी से है। इस ग्रंथ में छह विभाग (खण्ड) हैं। जिनमें कर्म सिद्धांत का विस्तार से वर्णन है। यह ग्रंथ परवर्ती साहित्य के लिए उपजीव्य रहा है। इस ग्रंथ पर आठवीं शताब्दी के आचार्य वीरसेन ने 72 हजार श्लोक प्रमाण धवला नामक टीका लिखी है।

आचार्य गुणधर राग :– द्वेष के विवेचन के साथ कर्मों की विभिन्न स्थितियों का वर्णन करने वाला ग्रंथ है–कषायपाहुड। इस ग्रंथ के रचयिता है पेज्जदोस पाहुड के पारगामी विद्वान् आचार्य गुणधर। ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के लगभग लिखे गये इस ग्रंथ में गुणाधराचार्य ने आत्मा के साथ कर्मों के सम्बन्ध बने एवं कर्म–फलों आदि का विस्तार से वर्णन किया है। इस ग्रंथ पर जयधवला नाम की टीका आचार्य वीरसेन और आचार्य जिनसेन के द्वारा लिखी गयी है।

आचार्य कुन्दकुन्द – कौण्डकुण्डपुर (आन्ध्र) के निवासी मूलसंघ के आचार्य कुन्दकुन्द शौरसेनी आगम ग्रंथों के बहुश्रुत दार्शनिक कवि हैं। ईसा की प्रथम शताब्दी के लगभग ग्रंथ रचना करने वाले कुन्दकुन्द ने लगभग दो दर्जन प्राकृत के ग्रंथ लिखे हैं। उनमें पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, समयसार, नियमसार, अष्टपाहुड, भक्तिसंग्रह एवं बारह–अनुपेक्खा आदि प्रमुख हैं। कुन्दकुन्द ने निश्चय और व्यवहार नय के प्रयोग द्वारा आत्म–स्वरूप का जो निरूपण किया है, वह अद्‌भुत है। विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं के परिप्रेक्ष्य में आध्यात्म का प्रतिपादन एवं श्रमणाचार की प्रतिष्ठा करना इनका प्रमुख लक्ष्य रहा है। इनके ग्रंथों में संयमित जीवन जीने की प्रेरणा मिलती है और ज्ञान–अज्ञान के सही स्वरूप की जानकारी मिलती है।

आचार्य यतिवृषभ – भूगोल एवं खगोल का जैन परम्परा की दृष्टि से वर्णन करने वाले आचार्यों में प्रसिद्ध हैं। उन्होंने 'तिलोयपण्णति' नामक ग्रंथ लिखा है, जो आठ हजार श्लोक प्रमाण है। इस ग्रंथ में प्राचीन भारतीय इतिहास, पुराण और जैन सिद्धांतों का वर्णन भी प्राप्त होता है। इस ग्रंथ में प्राचीन भाषाओं के नामों का उल्लेख है। प्राचीन गणित के अध्ययन के लिए यह ग्रंथ उपयोगी है। विद्वान् इसे ईसा की पांचवी शताब्दी के पूर्व की रचना मानते हैं।

आचार्य वट्टकेर – श्रमणाचार का प्रतिष्ठापक ग्रंथ 'मूलाचार' माना जाता है। इसके रचयिता आचार्य वट्टकेर हैं, जो उनका गुणमूलक नाम भी हो सकता है। इनका समय विद्वानों ने ईसा की चतुर्थ शताब्दी माना है। मूलाचार में मुनियों के आचार का निरूपण है, किन्तु यह ग्रंथ जैन सिद्धांतों की व्याख्या के लिए भी उपयोगी है।

आचार्य शिवकोटी (शिवार्य)– शिवार्य ने लगभग विक्रम की तृतीय शताब्दी में 'भगवती आराधना' नामक प्राकृत ग्रंथ लिखा है। इस ग्रंथ में लगभग 2170 गाथाएँ हैं, जो चार आराधनाओं दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप, का विस्तार से निरूपण करती है। इसमें जैन परम्परा के अनुसार समाधिमरण और उसके भेदों का भी वर्णन है।

इन्द्रिय–विजय एवं कषायविजय के समाधिमरण और उसके भेदों का भी वर्णन है। इन्द्रिय विजय एवं कषाय विजय के सम्बन्ध में शिवार्य ने महत्त्वपूर्ण दृष्टांत प्रस्तुत किये हैं। ग्रंथ में कई सुन्दर एवं ज्ञानवर्धक कथाओं का भी उल्लेख है। इस ग्रंथ की कई गाथाएँ श्वेताम्बर परम्परा के ग्रंथों में भी प्राप्त होती हैं।

स्वामीकार्तिकेय – जैन–सिद्धांत में अनुप्रेक्षाओं का विशेष महत्त्व है। इन अनुप्रेक्षाओं का संक्षिप्त विवरण कुन्दकुन्द के ग्रंथों में मिलता है। किन्तु उनका विस्तृत वर्णन कुमार कार्तिकेय ने अपनी रचना 'कार्तिकेयानुप्रेक्षा' में किया है। 489 गाथाओं में निबद्ध इस ग्रंथ में अध्रुव, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्म इन बारह अनुप्रेक्षाओं के स्वरूप को समझाया गया है। साथ ही प्रसंगवश जैन धर्म के अन्य सिद्धांतों का भी इसमें प्रतिपादन हुआ है।

देवसेन आचार्य – दसवीं शताब्दी के प्राकृत दार्शनिक कवियों में देवसेन का प्रमुख स्थान है। इन्होंने नयचक्र, आराधनासार, तत्वसार, दर्शनसार एवं भावसंग्रह आदि ग्रंथ प्राकृत में लिखे हैं। द्रव्य के स्वरूप का निश्चय नयों के बिना उसी प्रकार नहीं होता जैसे जल के बिना प्यास नहीं बुझती। इस प्रकार के कोई दृष्टांत देवसेन ने नयचक्र में दिये हैं। आराधनासार में सुन्दर प्रतीकों का प्रयोग हुआ है।

सिद्धांतचक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र – कर्नाटक के सेनापति चामुण्डराय के समकालीन आचार्य नेमिचन्द्र जैन सिद्धांत के बहुश्रुत विद्वान् थे। अतः उन्हें 'सिद्धांत चक्रवर्ती' के उपाधि प्राप्त थी। उन्होंने ईसा की 11वीं शताब्दी के जिन प्राकृत रचनाओं का प्रणयन किया है, उनमें प्रमुख हैं– गोम्मटसार, त्रिलोकसार, लब्धिसार, क्षपणसार एवं द्रव्यसंग्रह। आचार्य ने गोम्मटसार में षड्खण्डागम के विषय को सरलता से प्राकृत गाथाओं में समझाया है। पदार्थ–विवेचन एवं कर्म–सिद्धांत, गुणस्थान आदि को इसमें स्पष्ट किया गया है। त्रिलोकसार में लोक का वर्णन है। यह गणित और भूगोल के लिए भी उपयोगी है। द्रव्य संग्रह में जीव, अजीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन छह द्रव्यों का वर्णन है। सात तत्त्वों और मोक्षमार्ग का निरूपण भी इसमें हैं।

आचार्य वसुनन्दि – श्रावकों के आचार पर प्राकृत में व्यवस्थित रूप से प्रकाश डालने वाले आचार्य वसुनन्दि हैं। इन्होंने 12वीं शताब्दी में 546 गाथाओं में 'वसुनंदिश्रावकाचार' नामक जो ग्रंथ लिखा है, वह रत्नत्रय, पदार्थ, सप्तव्यसन, श्रावकप्रतिमाओं एवं विभिन्न व्रतों का प्रतिपादन करने वाला है।

प्रायश्चित्त

से जाणमजाणं वा, कट्टुं आहम्मिअं पयं।

संवरे खिप्पमप्पाणं, बीयं तं न समायरे।।

व्यक्ति जाने या अनजाने में कोई अधर्म कार्य कर बैठे तो अपनी आत्मा को तुरंत उससे हटा ले तथा ऐसी प्रतिज्ञा करे कि वह ऐसा कार्य पुनः नहीं करेगा।

(ii) जैनधर्म के प्रमुख सिद्धान्त

१. जैनधर्म का स्वरूप एवं प्राचीनता

जिन (जिनेन्द्र) भगवान द्वारा कहे गये धर्म को जैन धर्म कहते हैं। जयति इति जिनः। अपनी इन्द्रियों, वासनाओं, इच्छाओं और कर्मों को जीतने वाले जिन कहलाते हैं। जैन धर्म के प्राचीन नाम निम्नलिखित हैं–

1. **निर्ग्रन्थ धर्म–** समस्त प्रकार के परिग्रह से रहित साधु को निर्ग्रन्थ कहते हैं और उनके धर्म को निर्ग्रन्थ धर्म कहते हैं।
2. **श्रमण धर्म–** आत्मशुद्धि के लिए सतत् श्रम/पुरुषार्थ करने वाले श्रमण हैं और उनके द्वारा धारण किया जाने वाला श्रमण धर्म है।
3. **आर्हत् धर्म–** अरिहंत भगवान द्वारा प्रतिपादित धर्म आर्हत् धर्म है।
4. **जिनधर्म–** जिनेन्द्र कथित धर्म को जिनधर्म कहते हैं। जिनस्य उपासक को जैन कहते हैं।

जैन धर्म की प्रमुख मौलिक विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

1. अनेकान्त– अनेक का अर्थ है नाना और अन्त का अर्थ है धर्म अथवा स्वभाव। वस्तु के परस्पर विरोधी अनेक गुण–धर्मों के सद्भाव को स्वीकार करने वाली दृष्टि को अनेकान्त कहते हैं। जैसे– वस्तु नित्य, अनित्य, एक, अनेक आदि धर्मों से युक्त है।

2. स्याद्वाद– स्यात् का अर्थ है विवक्षा और वाद का अर्थ है कथन अर्थात् किसी अभिप्राय से अथवा दृष्टि विशेष से एक धर्म का कथन करने वाली शैली स्याद्वाद है। जैसे– द्रव्य की दृष्टि से वस्तु नित्य है, पर्याय की दृष्टि से वस्तु अनित्य है।

3. अपरिग्रहवाद– समस्त प्रकार की मूर्च्छा/आसक्ति का त्याग एवं मूर्च्छा का कारण पर पदार्थों का त्याग करना अपरिग्रहवाद है।

4. अहिंसा– किसी भी प्राणी को मन, वचन और काय से कष्ट नहीं पहुँचाना अहिंसा है। अहिंसा को परमधर्म कहा है। अहिंसा शब्द हिंसा के अभाव को सूचित करता है।

5. वस्तु की स्वतंत्रता– प्रत्येक वस्तु के स्वतंत्र अस्तित्त्व को स्वीकार कर उसके परिणमन को स्वतंत्र मानना वस्तु की स्वतंत्रता है।

6. अवतारवाद का निषेध– कर्मबन्ध के कारणों का अभाव होने पर भगवान का पुनः मनुष्य आदि के रूप में अवतार नहीं होता है। जैसे– घी से पुनः दूध नहीं बनता। जैनधर्म का अंतिम लक्ष्य परमात्म अवस्था को प्राप्त करना है। आचरण में अहिंसा, चिन्तन में अनेकांत, वाणी में स्याद्वाद और समाज में अपरिग्रहवाद के द्वारा वीतराग अवस्था को प्राप्त करते हुए परमात्म अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं। अनेक प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ताओं ने सिन्धु घाटी की सभ्यता के काल से जैन धर्म की प्राचीनता को स्वीकार किया है। उत्खनन में प्राप्त सील नं. 449 के लेख को प्रो. प्राणनाथ विद्यालंकार ने 'जिनेश्वर' पढ़ा है।

पुरातत्त्वविद् रायबहादुर चन्द्रा का वक्तव्य है कि सिन्धु घाटी की मोहरों में एक मूर्ति प्राप्त हुई है, जिसमें मथुरा की ऋषभदेव की खड्गासन मूर्ति के समान त्याग और वैराग्य के भाव दृष्टिगोचर होते हैं। हड़प्पा से प्राप्त नग्न मानव धड़ भी सिन्धु घाटी सभ्यता में जैन तीर्थंकरों के अस्तित्त्व को सूचित करता है। केन्द्रीय पुरातत्त्व विभाग के महानिर्देशक टी.एन.रामचन्द्रन ने उस पर गहन अध्ययन करते हुए लिखा है कि– 'हड़प्पा की कायोत्सर्ग मुद्रा में उत्कीर्णित मूर्ति पूर्ण रूप से जैन मूर्ति है।'

मथुरा का कंकाली टीला जैन पुरातत्त्व की दृष्टि से अतिमहत्त्वपूर्ण है। वहाँ की खुदाई से अत्यन्त प्राचीन देव निर्मित स्तूप (अज्ञातकाल) के अतिरिक्त एक सौ दस शिलालेख एवं कुछ प्रतिमायें मिली हैं, जो ई. पू. दूसरी सदी से 12वीं सदी तक की हैं।

२. जैन परम्परा के महापुरुष

महापुरुष– जो पुरुष विषय वासनाओं के दास न बनकर आत्मावलंबी होकर रत्नत्रय धर्म को उज्ज्वल बनाते हुए आत्मविकास के मार्ग में वर्धमान होते हैं, उन महान् आत्माओं को महापुरुष कहते हैं। इनकी संख्या 169 होती है। 14 कुलकर, 24 तीर्थंकर, 24–24 तीर्थंकर के माता–पिता, 12 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 नारायण, 9 प्रतिनारायण 9 नारद, 11 रुद्र और 24 कामदेव।

कुलकर– वे कुशल मनीषी, जो कर्मभूमि के प्रारंभ में होते हैं और मानव समूह को कुल के आधार पर व्यवस्थित कर मानव सभ्यता के सूत्रधार बनते हैं, वे कुलकर कहलाते हैं।

तीर्थंकर– जो धर्म परम्परा में आई हुई मलिनता, विकृतिओं को दूर कर धर्म के मूल स्वरूप को पुनः स्थापित करते हैं ऐसे धर्म तीर्थ को चलाने वाले अथवा धर्म–तीर्थ के प्रवर्तक महापुरूष तीर्थंकर कहलाते हैं।

हर एक साधक आत्मसाधना कर मोक्ष तो प्राप्त कर सकता है, पर तीर्थंकर नहीं बन सकता। इसके लिए अनेक जन्मों की साधना और कुछ विशिष्ट भावनाएं अपेक्षित होती हैं। विश्वकल्याण की भावना से प्रेरित होकर साधक जब किसी केवलज्ञानी अथवा श्रुतकेवली के चरणों में बैठकर सोलहकारण भावनाएँ भाता है वही तीर्थंकर प्रकृति का बंध करता है।

भगवान् महावीर–

वर्तमान में शासन नायक भगवान महावीर स्वामी का शासन चल रहा है।

प्राचीन भारत के कुण्डग्राम में तीर्थंकर महावीर स्वामी का जन्म चैत्र शुक्ल त्रयोदशी (सोमवार 27 मार्च ईसा पूर्व 599) के दिन हुआ था। उनके पिता ज्ञातृवंशी कश्यप गोत्रीय महाराजा सिद्धार्थ थे तथा माता त्रिशला थीं। महावीर के बचपन का नाम वर्द्धमान था। बाद में समय–समय पर घटित घटनाओं के कारण उनके वीर, अतिवीर, सन्मति और महावीर नाम प्रकट हुये।

महावीर कालीन परिस्थितियाँ अत्यन्त भयानक थीं। चारों ओर हिंसा भ्रष्टाचार का बोलबाला था। इन विषम परिस्थितियों ने उन्हें स्व–पर कल्याण हेतु प्रेरित किया। विवाह के प्रस्ताव को ठुकराते हुए 30 वर्ष की भरी जवानी में मार्गशीर्ष कृष्णा दशमीं (21 नवम्बर ईसा पूर्व 569) के दिन समस्त राज्यवैभव का त्यागकर महावीर ने जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली।

बारह वर्ष के घोर तपश्चरण के बाद उन्होंने जृम्भक नामक गाँव के ऋजुकूला नदी के किनारे केवलज्ञान प्राप्त किया। वे पूर्ण वीतरागी, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी परमात्मा बन गये। तत्पश्चात् उन्होंने 66 दिन बाद अपना प्रथम धर्मोपदेश दिया। उनके प्रथम शिष्य प्रकाण्ड वैदिक विद्वान् इन्द्रभूतिगौतम बने। महासती चंदना उनके आर्यिका संघ की प्रधान थीं। सम्राट श्रेणिक उनके प्रधान श्रोता थे।

भगवान महावीर ने कार्तिक कृष्णा अमावस्या (15 अक्टूबर मंगलवार ईसा पूर्व 527) के दिन प्रातःकाल की बेला में 72 वर्ष की अवस्था में पावानगर के कमल सरोवर से निर्वाण प्राप्त किया।

3. सच्चे देव, शास्त्र एवं गुरु

सच्चे देव– जो वीतरागी, सर्वज्ञ तथा हितोपदेशी होते हैं, वे सच्चे देव अथवा आप्त कहलाते हैं।

वीतरागी– जिनके रागद्वेष समाप्त हो गये हैं अथवा जो अठारह दोषों से रहित हो चुके हैं वे वीतरागी कहलाते हैं।

सर्वज्ञ – जो विश्व के सम्पूर्ण पदार्थों को एक ही समय में जानते हैं, ऐसे केवलज्ञानी जीव सर्वज्ञ कहलाते हैं।

हितोपदेशी– रत्नत्रय मोक्षमार्ग का भव्यजीवों के लिए बिना किसी इच्छा से कल्याण का उपदेश देने वाले परमात्मा हितोपदेशी कहलाते हैं।

नवदेवता– अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय साधु, जिनधर्म, जिनागम (शास्त्र) जिनचैत्य (जिनप्रतिमा) एवं चैत्यालय (मंदिर) ये नवदेवता हैं।

सच्चे शास्त्र– केवली भगवान के द्वारा प्रतिपादित (कहे गए) अतिशय बुद्धि के धारक गणधरदेव के द्वारा धारण किये गये एवं रागद्वेष की भावना रहित आचार्य, उपाध्याय मुनि एवं जैन परम्परा के विद्वानों द्वारा लिपिबद्ध किए गए शास्त्र सच्चे शास्त्र कहलाते हैं।

सच्चे शास्त्र के पर्यायवाची नाम हैं– जिनागम, जिनवचन, ग्रन्थ, सिद्धान्त, प्रवचन, शास्त्र, ज़िनवाणी आदि। विषय की अपेक्षा जिनागम को चार भागों में विभक्त किया गया है।

(1) प्रथमानुयोग (2) करणानुयोग (3) चरणानुयोग
(4) द्रव्यानुयोग।

1. **प्रथमानुयोग–** जिसमें 63 श्लाकापुरुष एवं 169 महापुरुषों के आदर्शमय जीवन चरित्र का वर्णन, बोधि अर्थात् रत्नत्रय एवं समाधिमरण (सल्लेखना) का वर्णन होता है, उसे प्रथमानुयोग से जाना जाता है। हरिवंश पुराण, पद्मपुराण, महापुराण, पाण्डवपुराण, आदिपुराण, उत्तरपुराण, श्रेणिकचरित आदि प्रथमानुयोग के प्रमुख ग्रन्थ हैं।

2. **करणानुयोग–** जो शास्त्र लोक–आलोक के विभाग का, कल्पकालों के परिवर्तन, चार गतियों के परिभ्रमण का कथन करता है, उसे करणानुयोग कहते हैं। गणितानुयोग लोकानुयोग, भी इसी के दूसरे नाम हैं। गणितसार, तिलोयपण्णत्ती, त्रिलोकसार, लोकविभाग, जम्बूद्वीपपण्णत्ति आदि करणानुयोग के प्रमुख ग्रन्थ हैं।

3. **चरणानुयोग–** जिस ग्रन्थ में श्रावक एवं मुनियों के चरित्र की उत्पत्ति, वृद्धि एवं रक्षा का वर्णन होता है, उसे चरणानुयोग कहते हैं। मूलाचार प्रदीप, मूलाचार, भगवती आराधना, अनगार धर्मामृत, सागर धर्मामृत, रत्नकरण्डक श्रावकाचार आदि चरणानुयोग के प्रमुख ग्रन्थ हैं।

4. **द्रव्यानुयोग–** जिस ग्रन्थ में जीव–अज़ीव, पुण्य–पाप, बंध–मोक्ष आदि का वर्णन होता हो आत्मा का कथन हो वह द्रव्यानुयोग कहलाता है। इस अनुयोग का विषय निम्नप्रकार से विभक्त किया जाता है–

द्रव्यानुयोग के शास्त्र

आगम		आध्यात्म	
सिद्धांत	**न्याय**	**भावना**	**ध्यान**
षटखण्डागम	अष्टसहस्त्री	समयसार	ज्ञानार्णव
कषायपाहुड	प्रमेयकमलमार्तण्ड	प्रवचनसार	तत्त्वानुशासन
गोम्मटसार	श्लोकवार्तिक	परमात्मप्रकाश	ध्यानस्तव
लब्धिसार	परीक्षामुख	योगसार	आदि
क्षपणासार	न्यायदीपिका	कार्तिकेयानुप्रेक्षा	
आदि	आप्तपरीक्षा	आदि	
	आलापद्धति		
	आदि		

सच्चे गुरु– जो पच्चेन्द्रिय विषयों की आशा से एवं आरम्भ परिग्रह से रहित हैं, निरंतर ज्ञान, ध्यान तथा तप में लवलीन रहते हैं, वे सच्चे गुरू कहलाते हैं। आचार्य कुंद–कुंद स्वामी ने प्रवचनसार ग्रन्थ में साधु की समता का इस प्रकार वर्णन किया है–

समसत्तुबंधुवग्गो, समसुहदुक्खो पसंसणिंदसमो।
समलोट्ठकंचणो पुण, जीवित मरणे समो समणो।।

जिसे शत्रु–बंधु वर्ग समान हैं, सुख–दुख समान हैं, प्रशंसा–निंदा में जो समता रखता है, जिसे पत्थर स्वर्ण समान है तथा जीवन–मरण के प्रति जिसको समता है, वही श्रमण है। समता ही साधु की निधि है।

४. णमोकार मंत्र और परमेष्ठी

जैन धर्म का मूलमंत्र णमोकार है। णमोकार मंत्र प्राकृत भाषा में उपलब्ध है। णमोकार मंत्र में पंचपरमेष्ठियों को नमस्कार किया गया है। इस मंत्र में किसी व्यक्ति विशेष को नमस्कार न करके गुणों को नमस्कार किया गया है। णमोकार मंत्र की रचना किसी ने नहीं की, अपितु यह अनादिनिधन मंत्र है। णमोकार मंत्र को सर्वप्रथम आचार्य धरसेन के शिष्य मुनि पुष्पदंत महाराज ने षटखण्डागम ग्रन्थ में मंगलाचरण के रूप में लिपिबद्ध किया है। णमोकार मंत्र के कतिपय पर्यायवाची नाम निम्नलिखित हैं–

(1) मूलमंत्र (2) महामंत्र (3) मंगलमंत्र
(4) पंचपरमेष्ठी मंत्र (5) अनादिनिधन मंत्र (6) अपराजित मंत्र
(7) मृत्युंजयी मंत्र

णमोकार मंत्र से चौरासीलाख मत्रों की उत्पत्ति हुई है। श्वासग्रहण करते हुए णमो अरिहंताणं, श्वास छोड़ते समय णमो सिद्धाणं, पुनः श्वास ग्रहण करते हुए णमो आयरियाणं, छोड़ते समय णमो उवज्झायाणं और अंत में श्वास ग्रहण करते हुए णमो लोए एवं श्वास छोड़ते समय सव्वसाहूणं पढ़ना चाहिए। णमोकार मंत्र में 5 वाक्य, 35 अक्षर, 58 मात्राएँ, 30 व्यंजन और 34 स्वर होते हैं।

परमेष्ठी– 'परमे पदे तिष्ठति इति परमेष्ठी' इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो परमपद (श्रेष्ठ पारलौकिक) में स्थित हो, उन्हें परमेष्ठी कहते हैं। अथवा जो गुणों में सर्वश्रेष्ठ होते हैं तथा जिन्हें चक्रवर्ती, इन्द्र, राजा–महाराजा सभी नमस्कार करते हैं, उन्हें परमेष्ठी कहते हैं। अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु के भेद से परमेष्ठी पाँच होते हैं।

अरिहंत परमेष्ठी– जिन्होंने चार घातिया कर्मों (ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय) को नष्ट कर दिया है, जो जन्म–मरण आदि 18 दोषों से रहित हो गए हैं, उन्हें अरिहंत परमेष्ठी कहते हैं। अरिहंत, अरहंत, अरुहंत, अर्हत्, जिन, सकल परमात्मा और संयोगकेवली अरिहंत परमेष्ठी के पर्यायवाची नाम हैं। अरिहंत परमेष्ठी की दिव्य ध्वनि के माध्यम से हमें सिद्धों का ज्ञान प्राप्त होता है तथा मोक्षमार्ग का उपदेश मिलता है। अतः अरिहंत भगवान् हमारे परम उपकारी हैं। इसलिए अरिहंत परमेष्ठी को सिद्धों से पहले नमस्कार किया है।

सिद्ध परमेष्ठी– जो दिव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म से रहित होकर सिद्धालय में विराजमान हो गए हैं, व सिद्ध परमेष्ठी के पर्यायवाची नाम हैं।

आचार्य परमेष्ठी– जो मुनि पंचाचार का पालन स्वयं करते हैं एवं अन्य साधुओं से करवाते हैं तथा जो संघ के नायक होते हैं, दीक्षा देते हैं वे आचार्य परमेष्ठी कहलाते हैं। आचार्य परमेष्ठी के 36 मूलगुण होते हैं– 12 तप, 10 धर्म, 5 आचार, 6 आवश्यक कर्त्तव्य एवं 3 गुप्ति।

उपाध्याय परमेष्ठी– जो मुनि रत्नत्रय का पालन करते हुए शास्त्रों के अध्ययन में निरंतर लगे रहते हैं एवं संघ के साधुओं को भी अध्ययन करवाते हैं, वे उपाध्याय परमेष्ठी कहलाते हैं। इन्हें पाठक भी कहते हैं। उपाध्याय परमेष्ठी के 25 मूलगुण होते हैं। वे ग्यारह अंग और चौदह पूर्व के ज्ञाता होते हैं।

साधु परमेष्ठी– जो समस्त प्रकार के आरंभ, परिग्रह से रहित होकर पूर्ण नग्न मुद्रा को धारण करके रत्नत्रय की साधना करते हैं, वे मुनि ही साधु परमेष्ठी कहलाते हैं। साधु परमेष्ठी के 28 मूलगुण होते हैं– 5 महाव्रत, 5 समिति, 5 इन्द्रिय विजय, 6 आवश्यक कर्त्तव्य, 7 विशेष गुण।

५. द्रव्य, गुण एवं पर्याय

द्रव्य– जो गुण और पर्याय से युक्त होता है, उसे द्रव्य कहते हैं। जैसे जीव द्रव्य है, ज्ञान–दर्शन उसके गुण हैं और मनुष्य उसकी पर्याय है। गुण और पर्याय के बिना द्रव्य नहीं रहता है और द्रव्य के बिना गुण–पर्याय नहीं रहते हैं। द्रव्य के छः भेद होते हैं–

1. **जीव द्रव्य–**	जिसमें ज्ञान, दर्शनरूप चेतना पायी जावे।
2. **पुदगल द्रव्य–**	जिसमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण पाया जावे।
3. **धर्म द्रव्य–**	चलते हुए जीव और पुद्गलों के ठहरने में जो सहकारी होता है। जैसे–पथिक के बैठने के लिए वृक्ष की छाया।
5. **आकाश द्रव्य–**	समस्त द्रव्यों को अवगाहना (स्थान) देता है।
6. **काल द्रव्य–**	समस्त द्रव्यों के परिणमन में सहकारी होता है।

गुण– द्रव्य के साथ जो हमेशा रहते हैं कभी भी द्रव्य से पृथक् नहीं किये जाते उन्हें सामान्य गुण कहते हैं। गुणों के दो भेद होते हैं–

(1) **सामान्य गुण–** जो गुण सभी द्रव्यों में समान रूप से पाये जाते हैं, उन्हें सामान्य गुण कहते हैं।

(2) **विशेष गुण–** जो गुण सभी द्रव्यों में न पाये जाकर किसी विशेष द्रव्य में पाये जाते हैं वे विशेष गुण कहलाते हैं।

पर्याय– द्रव्य की परिणमन शील अवस्था का नाम पर्याय है अथवा पूर्व आकर के त्याग और उत्तर आकार की उपलब्धि को पर्याय कहते हैं।

८. सप्त तत्व (पदार्थ)

तत्त्व– वस्तु के भाव या स्वभाव को तत्त्व कहते हैं। जैसे– स्वर्ण का स्वर्णत्त्व, जीव का जीवत्त्व।

तत्व सात होते हैं–

1. **जीव–** जिसमें ज्ञान, दर्शन, रूप, चेतना पायी जाती हो उसे जीव तत्व कहते हैं।
2. **अजीव–** जिसमें चेतना का अभाव पाया जाता हो उसे अजीव कहते हैं।
3. **आस्रव–** कर्मों के आने को आस्रव कहते हैं।
4. **बन्ध–** जीव और कर्मों के प्रदेशों का दूध पानी की तरह एकमेक हो जाना बधं कहलाता है।
5. **संवर–** आस्रव का निरोध करना संवर कहलाता है।
6. **निर्जरा–** कर्मों का आंशिक रूप से झड़ना निर्जरा है।
7. **मोक्ष–** कर्मों का सम्पूर्ण रूप से क्षय हो जाना मोक्ष है।

तत्त्वों के सात होने का कारण यह है कि सात प्रकार की जिज्ञासा होती है और उनका समाधान सात तत्त्वों के द्वारा होता है। यथा–

1. दुःख किसे मिल रहा है ?	जीव को
2. दुःख किससे मिल रहा है ?	अजीव से
3. दुःख का कारण क्या है ?	आस्रव
4. दुःख बढ़ता कैसे है ?	बन्ध से
5. दुःख को रोका कैसे जाय ?	संवर से
6. दुःख दूर कैसे हो ?	निर्जरा से
7. दुःख से रहित अवस्था क्या है ?	मोक्ष

जीव–स्वरूप–

मैं सुखी हूँ या दुःखी हूँ इस प्रकार की प्रतीति एवं पूर्व जन्म विषयक घटनाओं से जीव के अस्तित्त्व का ज्ञान होता है।

जीव की विविध अवस्थाएँ निम्नलिखित हैं–

1. **संसारी–** कर्मों से रहित जीवों को संसारी जीव कहते हैं। जैसे– मनुष्य, देव, नारकी, तिर्यंच्च।
2. **मुक्त–** कर्मों से रहित जीवों को मुक्त जीव कहते हैं। जैसे– सिद्ध जीव।
3. **त्रस–** द्वि इन्द्रिय से पंचेन्द्रिय जीवों को त्रस जीव कहते हैं। जैसे– शंख, खटमल, चींटी, भौंरा, मनुष्य, देव, नारकी आदि।
4. **स्थावर–** जिनमें मात्र स्पर्शन इन्द्रिय पायी जाती है उन्हें स्थावर जीव कहते हैं। जैसे–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति।

5. संज्ञी– मन से सहित जीवों को संज्ञी जीव कहते हैं। जैसे– मनुष्य, देव, नारकी, पशु आदि।

6. असंज्ञी– मन से रहित जीवों को असंज्ञी जीव कहते हैं। जैसे– कोई पानी का सांप आदि।

7. भव्य– जिनमें रत्नत्रय प्रकट होने की पात्रता होती है उन्हें भव्य जीव कहते हैं।

8. अभव्य– जिनमें रत्नत्रय प्रकट होने की पात्रता नहीं होती है, उन्हें अभव्य जीव कहते हैं।

9. बहिरात्मा– आत्मा का रुचि का अभाव अथवा शरीर को ही आत्मा मानने वाले जीव बहिरात्मा कहलाते हैं।

10. अन्तरात्मा– शरीर और आत्मा में भेद करने वाले जीव अन्तरात्मा कहलाते हैं।

अजीव तत्त्व– अजीव तत्त्व के पाँच भेद होते हैं–

1. पुद्गल द्रव्य
2. धर्म द्रव्य
3. अधर्म द्रव्य
4. आकाश द्रव्य
5. काल द्रव्य

पुद्गल– जिसमें स्पर्श, रस, गंध और वर्ण पाया जाता है तथा जो पूरण=मिलना, गलन=मिटना, स्वभाव को लिए है, वह पुद्गल कहलाता है। पुद्गल को विज्ञान की भाषा में फ्यूजन एण्ड फिशन (Fusion and Fission) कहते हैं। फ्यूजन का अर्थ है–संयोग, फिशन का अर्थ है– बिखरना फैलना। इसे मैटर भी कहते हैं। पुद्गल के दो भेद हैं।

(1) अणु– अतिभागी पुद्गल की सूक्ष्मतम अवस्था को अणु कहते हैं। इसका दूसरा विभाग नहीं होता है–

(2) स्कन्ध– अनेक अणुओं के संयोग से मिलकर पुद्गल की पिण्डावस्था स्कन्ध कहलाती है।

आस्रव तत्त्व– आस्रव के मूल कारण पाँच हैं–

1. **मिथ्यात्त्व–** विपरीत श्रद्धा अथवा तत्त्वज्ञान का अभाव।
2. **अविरति–** चरित्रं ग्रहण की रुचि और प्रवृत्ति का अभाव।
3. **प्रमाद–** अच्छे कार्यों में अनादर, आलस्य का होना।
4. **कषाय–** जो आत्मा को दु:ख दे।
5. **योग–** मन, वचन, काय की प्रवृत्ति।

आस्रव के दो भेद निम्न हैं–

1. **भावास्रव**–जिन राग–द्वेषरूप भावों से कर्म आते हैं।
2. **द्रव्यास्रव**–ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मों का आना अथवा शुभास्रव, अशुभास्रव के भेद से भी **आस्रव के दो भेद हैं।**

1. शुभास्रव (पुण्यास्रव)– शुभ मन, वचन, काय के द्वारा जो कर्मो का आगमन होता है।

2. अशुभास्रव–(पापास्रव) अशुभ मन, वचन, काय के द्वारा जो कर्मों का आगमन होता है।

बन्ध– बन्ध तत्त्व के दो भेद निम्न हैं–

(1) **भावबन्ध–** राग–द्वेष आदि विकारों भावों को भाव बन्ध कहते हैं।

(2) **द्रव्य बन्ध–** कर्म पुद्गलों का आत्मा के साथ एकाकार हो जाना द्रव्य बंध है।

संवर के दो भेद निम्न हैं–

1. **भाव संवर–** जिन भावों से कर्मों का आना रुक जाता है, उन भावों को भाव संवर कहते हैं।

2. **द्रव्यसंवर–** आते हुए द्रव्यकर्मों का रुक जाना द्रव्य संवर है।

संवर के साधन निम्न हैं–

1. **व्रत–** पापों के त्याग को व्रत कहते हैं।

2. **समिति–** सम्यक् प्रवृत्ति को समिति कहते हैं।

3. **गुप्ति–** पाप क्रियाओं से आत्मा की रक्षा करना गुप्ति है।

4. **धर्म–** जो व्यक्ति को दुःख से मुक्त कराकर सुख तक पहुँचा दे उसे धर्म कहते हैं।

5. **अनुप्रेक्षा–** किसी भी पदार्थ का बार–बार चिन्तन करना अनुप्रेक्षा है।

6. **परिषहजय–** सब ओर से समागत कष्टों को समता पूर्वक सहन करना परिषहजय है।

7. **चरित्र–** जिसके द्वारा हित की प्राप्ति एवं अहित का निवारण होता है, उसे चरित्र कहते हैं।

निर्जरा तत्त्व के दो भेद निम्न हैं–

1. **भाव निर्जरा–** आत्मा के जिन भावों से कर्म झड़ते हैं।

2. **द्रव्य निर्जरा–** कर्म प्रदेशों का आत्मा से अलग होना।

पदार्थ विवेचन–

जिसमें तत्त्व पाया जाता है, उसे पदार्थ कहते हैं। सात तत्त्वों में पुण्य तथा पाप मिलाकर नौ पदार्थ होते हैं।

पुण्य का आस्रव – जिससे प्राणी को इष्ट वस्तु की प्राप्ति तथा सुखदायक सामग्री प्राप्त होती है, उसे पुण्य कहते हैं। जैसे– सन्तान की प्राप्ति, व्यापार में लाभ, उच्चपद की प्राप्ति ये पुण्य के उदय से होते हैं। धर्मपालन करना, व्रतपालन, पूजन–दान आदि पुण्यास्रव के कारण हैं।

पाप– जिससे प्राणी को अनिष्ट वस्तु और दुःखदायक सामग्री प्राप्त होती है, उसे पाप कहते हैं। जैसे सन्तान वियोग, चोरी हो जाना, असाध्य रोग होना आदि। हिंसा करना, झूठ बोलना, चोरी करना, परिग्रह रखना, परनिंदा करना आदि कारणों से पापास्रव होता है।

७. मोक्षमार्ग (रत्नत्रय)

मोक्षमार्ग रत्नत्रय– सम्यग्यदर्शन, सम्यग्यज्ञान, सम्यक्चरित्र इन तीनों की एकता को मोक्षमार्ग कहते हैं।

(क) सम्यग्यदर्शन

संसार का हर प्राणी सुख चाहता है। सच्चा सुख मोक्ष में है। मोक्ष मार्ग पर चलने से मोक्ष की प्राप्ति होती है मोक्षमार्ग का प्रथम चरण सम्यग्यदर्शन है।

विभिन्न दृष्टियों से सम्यग्यदर्शन के विभिन्न लक्षण बताए गए हैं—

1. सच्चे देव, शास्त्र और गुरू पर तीन मूढ़ता, छह अनायतन, आठ मद से रहित एवं आठ अंगों से सहित श्रद्धान करना।

2. जीवादि सात तत्त्वों पर यथार्थ श्रद्धान करना।

3. स्व–पर पदार्थों पर श्रद्धान करना।

4. शुद्ध आत्मा का श्रद्धान करना।

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के दो साधन हैं—

अंतरंग साधन

सम्यक्त्व विरोधी कर्मो का उपशम, क्षय एवं क्षयोपशम

बहिरंग साधन

(1) जाति स्मरण

(2) वेदनानुभव

(3) धर्मश्रवण

(4) जिनबिम्ब दर्शन

(5) जिनमहिमा दर्शन

(6) देवर्द्धिदर्शन

मूढ़ता— विवेक रहित अज्ञानपूर्ण धार्मिक, अंध–विश्वास वाली क्रियाओं को मूढ़ता कहते हैं। मूढ़ता तीन होती हैं—

(1) लोक मूढ़ता— धर्मबुद्धि से नदी, तालाब में स्नान करना, पर्वत से गिरना, अग्नि में जलना आदि।

(2) देवमूढ़ता— वरदान (लौकिक इच्छा) की अभिलाषा से रागी, द्वेषी देवी–देवताओं की पूजा करना।

(3) गुरू मूढ़ता— आरम्भ परिग्रह से युक्त हिंसा आदि के कार्यों में संलग्न पाखण्डी साधुओं का सत्कार करना।

मद— क्षणिक भौतिक उपलब्धियों को लेकर अहंकार, घमण्ड, गर्व करना मद कहलाता है। निमित्तों की अपेक्षा मद के आठ भेद हैं।

(1) ज्ञान मद　(2) पूजा मद　(3) कुल मद (पितृपक्ष)

(4) जाति मद (मातृपक्ष)　(5) बल मद　(6) ऋद्धि मद

(7) तप मद　(8) रूप मद

सम्यग्यदर्शन के आठ अंग—

1. **निःशंकित अंग—** मोक्षमार्ग एवं मोक्षमार्गियों पर शंका नहीं करना।

2. **निकांक्षित अंग—** लोक एवं परलोक सम्बन्धी भोगों की चाह करना।

3. **निर्विचिकित्सा अंग—** धार्मिक जनों के ग्लानिजनक शरीर को देखकर घृणा नहीं करना।

4. **अमूढ़दृष्टि अंग—** लौकिक, प्रलोभन, चमत्कार आदि से प्रभावित नहीं होना।

5. **उपगूहन अंग–** दूसरों के दोष तथा अपने गुणों को छिपाना।

6. **स्थितिकरण अंग–** धर्ममार्ग से विचलित व्यक्ति को सहारा देना।

7. **वात्सल्य अंग–** धर्मात्माओं के प्रति निष्कपट प्रेम रखना।

8. **प्रभावना अंग–** जनकल्याण की भावना से अपने आचरण से धर्म का प्रचार –प्रसार करना।

सम्यग्दर्शन के आठ गुण–

1. **संवेग** – संसार के दुःखों से डरकर धर्ममार्ग में अनुराग करना।
2. **निर्वेग/निर्वेद–** संसार, शरीर और भोगों से विरक्ति रखना।
3. **आत्मनिंदा–** अपने दोषों की निंदा करना।
4. **आत्मगर्हा–** गुरू के समक्ष अपने दोषों को प्रकट करना।
5. **उपशम–** क्रोधादि विकारों का नियंत्रण होना।
6. **भक्ति–** पच्चपरमेष्ठी की पूजा, विनय भक्ति करना।
7. **आस्तिक्य–** आत्मा, कर्म, पाप–पुण्य, पुनर्जन्म में आस्था रखना।
8. **अनुकम्पा–** प्राणीमात्र के प्रति दया–भाव रखना।

सम्यग्दर्शन की महिमा–

सम्यग्दर्शन मोक्षरूपी महल में प्रवेश करने के लिए प्रथम सीढ़ी है। सम्यग्यदर्शन के माध्यम से ही ज्ञान और चरित्र सम्यकपने को प्राप्त होते हैं। सम्यक्त्व के प्रभाव से जीव नारकी, तिर्यच्च, अल्पायु, पंच स्थावर, विकलत्रय और दरिद्रता आदि पर्यायों में जन्म नहीं लेता है।

सम्यक्त्व प्राप्ति के पूर्व यदि नरकायु का बंध किया है तो प्रथम नरक में ही जन्म लेगा और तिर्यंचायु का बंध किया है तो भोगभूमि का तिर्यंच बनेगा।

सम्यग्यदृष्टि जीव सम्यक्त्व के प्रभाव से वैमानिक देवों में इन्द्र का पद, चक्रवर्ती पद तीर्थंकर पद प्राप्त करता हुआ निर्वाण को भी प्राप्त करता है।

(ख) सम्यग्ज्ञान-स्वरूप

जो वस्तु जैसी है उसका उसी रूप में बोध कराने वाले ज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

परोक्ष सम्यग्ज्ञान– इन्द्रिय और मन के आलम्बन से होने वाला ज्ञान।

प्रत्यक्ष सम्यग्ज्ञान– बिना किसी बाह्य आलम्बन के होने वाला ज्ञान।

निरन्तर शास्त्रों का अभ्यास, सत्संगति में शास्त्र चर्चा, वार्ता करते हुए अपने ज्ञान को निरन्तर बढ़ाते हुए हेयोपादेय का ज्ञान करके भेद ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

(ग) सम्यक्चरित्र (श्रावकाचार एवं श्रमणाचार)

चरित्र– अशुभ कार्यों से अर्थात् पाप कार्यों से हटकर शुभकार्यों में लगना चरित्र कहलाता है। चरित्र के दो भेद हैं–

(1) एकदेश चरित्र (2) सकलचरित्र

८. श्रावकाचार

श्रावक– एकदेश चरित्र श्रावकों का होता है। जो श्रद्धावान, विवेकवान और क्रियावान होता है, उसे श्रावक कहते हैं। श्रावक के तीन भेद हैं–

पक्षिक श्रावक– मद्युत्याग, मधुत्याग, मांसत्याग, पाँच उदुम्बर फल त्याग, अभक्ष्य त्याग, रात्रि भोजन त्याग, पंचपरमेष्ठी की पूजा, जीवदया आदि का पालन करने वाला पक्षिक श्रावक कहलाता है।

नैष्ठिक श्रावक– जो निष्ठापूर्वक श्रावक धर्म का पालन करता है वह नैष्ठिक श्रावक कहलाता है।

साधक श्रावक– सल्लेखना की साधना में संलग्न श्रावक साधक श्रावक कहलाता है।

श्रावक के षट आवश्यक कर्त्तव्य –

1. देवपूजा – मन, वचन, काय से जिनेन्द्र भगवान् के गुणों का चिन्तन–मनन करना देवपूजा कहलाती है।

2. गुरु उपासना – मोक्षमार्ग के साधक गुरुओं का उपदेश सुनना, भक्तिपूर्वक उनकी सेवा करना गुरु उपासना है।

3. स्वाध्याय – श्री जिनेन्द्र कथित ग्रंथों का पठन–पाठन करना एवं चिन्तन–मनन करना स्वाध्याय है।

4. संयम – अपने मन और इन्द्रियों को नियंत्रण में रखना संयम कहलाता है।

5. तप – अपनी इच्छाओं का निरोध करना तप कहलाता है।

6. दान – मोक्षमार्ग की साधना में संलग्न जीवों के लिए स्व और पर कल्याण की भावना से योग्य द्रव्य का त्याग करना दान कहलाता है।

दान के चार भेद हैं– 1. आहारदान 2.उपकरणदान/ज्ञानदान 3. औषधिदान 4. अभयदान अथवा आवासदान।

ग्यारह प्रतिमाएँ–

नैष्ठिक श्रावक के 11 पद हैं। इन्हें ही श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएँ कहते हैं।

1. दर्शन प्रतिमा	2. व्रत प्रतिमा	3. सामायिक प्रतिमा
4. प्रोषधोपवास	5. सचित्त त्याग प्रतिमा	6. रात्रि भुक्तित्यागप्रतिमा
7. ब्रह्मचर्य प्रतिमा	8. आरम्भ त्याग प्रतिमा	9. परिग्रह त्याग प्रतिमा
10. अनुमति त्याग प्रतिमा		11. उद्दष्टि त्याग प्रतिमा

श्रावक के बारह व्रत –

<u>अणुव्रत विवेचन–</u>

अणुव्रत– हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पाँच पापों का स्थूलरूप से त्याग करना अणुव्रत कहलाता है। अणुव्रत पाँच होते हैं–

1. अहिंसाणुव्रत –

संकल्पपूर्वक त्रस जीवों का घात, मन, वचन, काय से नहीं करना और निष्प्रयोजन स्थावर जीवों की हिंसा भी नहीं करना।

2. सत्याणुव्रत –

स्थूल झूठ का त्याग सत्याणुव्रत कहलाता है ऐसा सत्य भी नहीं बोलना कि जिससे किसी पर बिना कारण आपत्ति आ जाए।

3. अचौर्याणुव्रत –

स्थूल रूप से चोरी का त्याग करना आचौर्याणुव्रत कहलाता है।

4. ब्रह्मचर्य –

अपनी विवाहित स्त्री के अतिरिक्त सभी स्त्रियों के प्रति माँ, बहन और बेटी का व्यवहार रखना ब्रह्मचर्याणुव्रत कहलाता है। इसे स्वदार संतोषव्रत भी कहते हैं।

5. परिग्रह परिमाणुव्रत –

अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप धन, धान्यादि पदार्थों की सीमा तय करके शेष का त्याग करना परिग्रह परिमाणाणुव्रत कहलाता है।

गुणव्रत–

जो अणुव्रतों की वृद्धि में सहायक होते हैं उन्हें गुणव्रत कहते हैं। गुणव्रत तीन होते हैं–

1. दिग्व्रत – सूक्ष्मपापों से बचने के लिए दशों दिशाओं की सीमा बनाकर उससे बाहर नहीं जाना।

2. देश व्रत – दिग्व्रत में ली हुई मर्यादा को घड़ी, घण्टा, दिन आदि तक नगर, मुहल्ला, चौराहा आदि की सीमा बनाना देशव्रत कहलाता है।

3. अनर्थदण्ड व्रत– निष्प्रयोजन पाप के कार्यों से विरत होना अनर्थदण्ड विरति व्रत कहलाता है।

शिक्षाव्रत–

जिन व्रतों का पालन करने से मुनि आर्यिका बनने की शिक्षाप्राप्त होती है, उन व्रतों को शिक्षा व्रत कहते हैं। शिक्षाव्रत चार होते हैं–

1. सामायिक शिक्षाव्रत– समता भाव धारण करना सामायिक है। पाँचों पापों का त्याग कर परमात्मस्वरूप का चिन्तन करना सामायिक है।

2. प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत– पर्व के दिनों में अर्थात् अष्टमी, चतुर्दशी को समस्त आरम्भ कार्यों का त्याग करके उपवास करते हुए धर्मध्यान करना प्रोषधोपवास है।

3. भोगोपभोग परिमाण शिक्षाव्रत– भोग एवं उपभोग की वस्तुओं में परिमाण करके राग भाव कम करना। भोग–जो वस्तु एक बार भोगने में आए। जैसे– भोजन, पानी आदि। उपभोग–जो वस्तु बार–बार भोगने में आए। जैसे– वस्त्र, आभूषण, यान आदि।

4. अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत– अतिथि– साधु पुरुषों को संयम की आराधना के लिए आहार, औषधि, उपकरण एवं वसति का का दान करना अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत कहलाता है।

९. सप्त व्यसन एवं पांच पाप

धर्मधारण करने के लिए व्यक्ति को सर्वप्रथम सप्त व्यसनों का त्याग करना चाहिए। व्यसनी व्यक्ति को जिनवाणी सुनने की भी पात्रता नहीं है।

बुरी आदतों को व्यंजन कहते हैं। बुरी आदतें मनुष्य को लौकिक, पारलौकिक संकटों में डाल देती हैं। व्यसनों में फंसा मनुष्य पथभ्रंष्ट होकर आर्थिक हानि के साथ शारीरिक हानि को भी उठाता है। व्यसन सात हैं–

(1) जुआ खेलना
(2) मांसाहार
(3) मद्य
(4) वेश्यावृत्ति
(5) शिकार
(6) चोरी
(7) परस्त्री सेवन

पाँच पाप– जिस कार्य को करने में आत्मा का पतन होता है अथवा जो हमें शुभ कार्यो में नहीं लगने देता है उसे पाप कहते हैं। पाप पाँच होते हैं–

1. हिंसा 2. झूठ 3. चोरी 4. कुशील और
5. परिग्रह

1. हिंसा– प्रमादपूर्वक मन, वचन, काय के द्वारा अपने अथवा दूसरे जीवों के प्राणों का घात करना हिंसा कहलाती है। क्रोध, मान, माया अथवा लोभ से प्रेरित होकर जीव हिंसा के कार्य में लगता है।
हिंसा के चार भेद हैं–

(1) संकल्पी हिंसा– संकल्प पूर्वक किसी भी प्राणी को मारने का भाव करना संकल्पी हिंसा है। बूचड़ खाने की हिंसा, गर्भपात की हिंसा, कीटनाशक के प्रयोग की हिंसा, बलि चढ़ाना, पुतला–दहन आदि की हिंसा संकल्पी हिंसा ही है।

(2) आरंभी हिंसा– मकान–निर्माण, भोजन–निर्माण, मकान की सफाई, शरीर की सफाई, वस्त्र आदि की सफाई करने में जो स्थावर जीवों का घात होता है वह आरंभी हिंसा कहलाती है।

(3) उद्योगी हिंसा– कृषि, व्यापार एवं नौकरी आदि आजीविका प्राप्त करने में जो हिंसा होती है, वह उद्योगी हिंसा है।

(4) विरोधी हिंसा– स्वयं की रक्षा, परिवार की रक्षा समाज, संस्कृति एवं धर्म की रक्षा हेतु जो हिंसा होती है वह विरोधी हिंसा कहलाती है।

द्रव्य हिंसा– किसी जीव का शरीर आदि से घात करना द्रव्य हिंसा है।

भाव हिंसा– आत्मा के अंदर राग–द्वेष, मोह आदि विकारों, परिणामों की उत्पत्ति होना भाव हिंसा है।

गृहस्थ संकल्पी हिंसा का पूर्णरूप से त्यागी होता है किन्तु अन्य हिंसाओं का त्याग वह नहीं कर सकता है, किन्तु हर कार्य विवेक पूर्वक करता है। साधु समस्त प्रकार की हिंसा के पूर्ण त्यागी होते हैं।

2. असत्य– जैसा देखा हो, जैसा सुना हो, वैसा नहीं कहकर अन्यथा कहना झूठ है अथवा ऐसा सत्य भी झूठ की श्रेणी में ही आता है जिससे स्व–पर का घात होता है।

3. चोरी– दूसरों की रखी हुई, भूली हुई, गिरी हुई वस्तु को स्वयं ग्रहण करना अथवा उठाकर दूसरों को देना चोरी कहलाती है।

4. कुशील– जिनका परस्पर में विवाह हुआ है ऐसे स्त्री–पुरुष का एक दूसरे को छोड़कर अन्य स्त्री–पुरुषों का एक दूसरे के प्रति राग भाव से सम्बन्ध होना कुशील पाप कहलाता है।

5. परिग्रह– जमीन, मकान, धन–धान्य, सोना–चाँदी आदि पदार्थों के प्रति तीव्र आसक्ति भाव होना परिग्रह पाप कहलाता है।

पापों का फल :– पापी व्यक्ति को सामाजिक स्तर पर इस लोक में भी अनेक प्रकार के दण्ड दिये जाते हैं। उसे परलोक में नरक तिर्यंच्च आदि दुर्गतियों में जाकर अनेक प्रकार के कष्ट उठाना पड़ते हैं।

कषायः– जो कलुषित भाव आत्मा को संसार में परिभ्रमण कराती है, चरित्रगुण का घात करती है एवं आत्मा के अंदर कलुषित खोटे परिणाम उत्पन्न करती है उसे कषाय कहते हैं।

कषाय के चार भेद हैं–

1. **क्रोध–** स्व और पर का घात करने वाले क्रूर परिणाम
2. **अहंकार–** घमण्ड रूप परिणामों का होना।
3. **माया–** दूसरों को धोखा देने रूप कुटिल परिणामों का होना।
4. **लोभ–** बाह्य पदार्थों में एवं शरीर में तीव्र राग रूप परिणाम।

१०. रात्रि भोजन त्याग

सूर्य की किरणों में (Ultravolate) अल्ट्रावायलेट एवं (Infrared) इन्फ्रारेड नाम की किरणें रहती है। इन किरणों के कारण दिन में सूक्ष्मजीवों की उत्पत्ति नहीं होती है। सूर्यास्त होते ही रात्रि में जीवों की उत्पत्ति प्रारम्भ हो जाती है। यदि रात्रि में भोजन करते हैं तो उन जीवों का घात (हिंसा) होता है। पेट में भोजन के साथ छोटे–छोटे जीव चले जाते हैं और अनेक प्रकार की बीमारियाँ जन्म ले लेती हैं। अतः अहिंसा धर्म का पालन करने के साथ–साथ आरोग्य लाभ की दृष्टि से भी रात्रिभोजन का त्याग करना चाहिए।

११. दश धर्म

धर्म– जो धारण किया जाता है अथवा प्रकट कियां जाता है वह धर्म कहलाता है। धर्म के 10 लक्षण हैं–

(1) उत्तम क्षमा– अपशब्द सुनने पर, उपसर्ग आने पर अथवा क्रोध के कारण मिलने पर क्रोध नहीं करना उत्तम क्षमा धर्म है।

(2) उत्तम मार्दव– उत्तम कुल, विद्या, बल, तप, आदि का अहंकार नहीं करना उत्तम मार्दव धर्म है।

(3) उत्तम आर्जव– जो विचार मन में स्थित है वही वचन से कहना तथा शरीर से उसी प्रकार सरल प्रवृत्ति करना अर्थात् छल कपट का त्याग करना उत्तम आर्जव धर्म है।

(4) उत्तम शौच– लोभ का त्याग करके आत्मा को पवित्र बनाना उत्तम शौच धर्म है।

(5) उत्तम सत्य– दूसरों को कष्टकारी वचनों का त्याग करके हित–मित और प्रिय वचन बोलना उत्तम सत्य धर्म है।

(6) उत्तम संयम– अपनी इन्द्रियों व मन को वश में करना और षटकाय के जीवों की रक्षा करना उत्तम संयम धर्म है।

(7) उत्तम तप– कर्मों की निर्जरा के लिए बारह प्रकार के तपों को धारण करना उत्तम धर्म है।

(8) उत्तम त्याग– संयमी जीवों को योग्य ज्ञानादि का दान करना उत्तम त्याग है।

(9) उत्तम आकिंचन्य– संसार में आत्मा के अतिरिक्त अन्य कोई भी पदार्थ मेरा नहीं है अर्थात् ममत्व का त्याग उत्तम आकिंचन्य धर्म है।

(10) उत्तम ब्रह्मचर्य– स्त्री–संसर्ग का त्याग करके आत्मा में रमण करना उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म है।

छः आवश्यक कर्त्तव्य– प्रतिदिन नियम से करने योग्य कर्त्तव्यों को आवश्यक कर्त्तव्य कहते हैं और वे छः होते हैं–

1. **समता/सामयिक–** समता परिणामों को धारण करना।
2. **वंदना–** किसी एक तीर्थंकर अथवा परमेष्ठी के गुणों का स्तवन करना।
3. **स्तुति–** चौबीस तीर्थंकर अथवा परमेष्ठी के गुणों का स्तवन करना।
4. **प्रतिक्रमण–** व्रतों में लगे हुए दोषों की आलोचना करना।
5. **प्रत्याख्यान–** भविष्य में दोष न करने की प्रतिज्ञा करना।
6. **कायोत्सर्ग–** परिमित समय के लिए शरीर से ममत्व का त्याग करना।

१२. श्रमणाचार

पाँचों पापों का मन, वचन, काय, कृत, कारित और अनुमोदना से जीवन पर्यन्त के लिए त्याग ही सकल चरित्र है। मुनिराजों का सकल चारित्र 13 प्रकार का होता है–

(1) पाँच महाव्रत (2) पाँच समिति (3) तीन गुप्ति

पाँच महाव्रत

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, और परिग्रह इन पाँच पापों का जीवन पर्यन्त के लिए मन, वचन, काय और कृत, कारित अनुमोदना से त्याग करना महाव्रत कहलाता है। महाव्रत पाँच होते हैं–

(1) अहिंसा महाव्रत– षटकाय के जीवों की विराधना (हिंसा) नहीं करना एवं रागद्वेष का पूर्ण त्याग करना।

(2) सत्य महाव्रत– असत्य वचन, कटुवचन एवं दूसरों को पीड़ा पहुँचाने वाले वचनों का पूर्ण त्याग करना।

(3) अचौर्यव्रत– परवस्तु के ग्रहण का पूर्ण त्याग करना।

(4) ब्रम्हचर्य व्रत– अब्रह्म अर्थात् कुशील का पूर्ण त्याग करना।

(5) अपरिग्रह महाव्रत–धन, धान्य कुटुम्ब–परिवार आदि के प्रति ममत्व का पूर्ण त्याग करना।

पाँच समितियाँ

सम्यक अर्थात भली प्रकार से प्रवृत्ति करने को समिति कहते हैं समिति पाँच होती हैं–

(1) ईर्ष्या समिति– किसी भी जीव की हिंसा न हो, इस अभिप्राय से सामने की चार हाथ भूमि देखकर चलना।

(2) भाषा समिति– चुगली, निंदा अथवा आत्मप्रशंसा का त्याग करके हित, मित और प्रिय वचन बोलना।

(3) एषणा समिति–सदाचारी श्रावक के यहाँ 46 दोष एवं 32 अंतराय का त्याग करके नवधाभक्ति पूर्वक प्राप्त निर्दोष आहार गहण करना।

नवधाभक्ति के प्रकार–

1. पड़गाहन करना 2. उच्च स्थान 3. पाद प्रक्षाल 4. पूजन 5.नमोऽस्तु
6. मनशुद्धि 7. वचनशुद्धि 8. कायशुद्धि 9. आहार शुद्धि

(4) आदान निक्षेपण समिति– शास्त्र, कमण्डल आदि उपकरणों को उठाते रखते समय देखभाल कर रखना उठाना।

(5) प्रतिष्ठापन समिति– जीव–जन्तु रहित प्रासुक भूमि में स्वशरीर के मल–मूत्र का त्याग करना।

तीन गुप्ति– संसार के कारणों से हटकर आत्मा का रक्षण (गोपन) करना गुप्ति कहलाती है। गुप्ति तीन होती हैं–

1. **मनोगुप्ति –** मन को राग–द्वेष से अप्रभावित रखना।
2. **वचनगुप्ति –** शुभ–अशुभ वचनों का त्याग करना।
3. **कायगुप्ति –** शारीरिक क्रियाओं का त्याग करना।

तप–विवेचन

कर्म क्षय के लिए जो तपा जाता है, वह तप कहलाता है। तप के दो भेद हैं– बाह्य तप एवं अंतरंग तप।

बाह्य तप– जो बाह्य तप के आलम्बन से होता है और जो दूसरों के देखने में भी आता है तथा मिथ्यादृष्टि जब भी जिसे कर सकते हैं, उसे बाह्य तप कहते हैं। बाह्यतप के 6 भेद हैं–

1. अनशन – ख्याति, पूजा, लाभ आदि लौकिक फल की इच्छा के बिना संयम की सिद्धि, राग का त्याग, कर्मों के नाश एवं ध्यान स्वाध्याय की सिद्धि के लिए चारों प्रकार के भोजन का त्याग करना अनशन है।

2. अवमौदर्य / उनोदर– उपर्युक्त कारणों से अल्प आहार ग्रहण करना अवमौदर्य तप है।

3. वृत्तिपरिसंख्यान – आहार को निकलते समय कुछ नियम लेकर निकलना कि यदि ऐसा होगा तो आहार गहण करूँगा, यह वृत्तिपरिसंख्यान तप है।

4. रस परित्याग – इन्द्रियों को जीतने के लिए घी, दूध, दही, तेल, मीठा और नमक इन छह रसों में से कुछ का अथवा सभी का त्याग करना रस परित्याग है।

5. विविक्त शय्यासन – ब्रह्मचर्य, स्वाध्याय, ध्यान आदि की सिद्धि के लिए एकान्त स्थान में शयन करना एवं आसन लगाना विविक्त शय्याशन है।

6. कायक्लेश– शरीर से ममत्व त्याग कर अनेक प्रकार के कष्टप्रद योग धारण करना कायक्लेश है।

अन्तरंग तप– जिसका सम्बन्ध मनोविग्रह से होता है एवं अंतरंग तप आत्मशुद्धि के लिए किये जाते हैं। अंतरंग के भी 6 भेद हैं–

1. प्रायश्चित – अपने किये गए अपराधों को दूर करना प्रायश्चित है।

2. विनय – पूज्य पुरुषों एवं मोक्ष के साधनों के प्रति आदर का भाव होना विनय है।

3. वैयावृत्य – गुणों के अनुरागपूर्वक संयमीजनों की सेवा करना वैयावृत्य है।

4. स्वाध्याय– प्रमाद का त्याग कर ज्ञान की आराधना करना अथवा स्व को पाना स्वाध्याय है।

5. कायोत्सर्ग– शरीर के अहंकार–ममकार का त्याग करना कायोत्सर्ग है।

6. ध्यान– मन का किसी एक विषय पर एकाग्र करना ध्यान है।

१३. कर्म-सिद्धान्त

कर्म– जो जीव को परतंत्र करता है अथवा जिसके द्वारा जीव परतंत्र किया जाता है उसे कर्म कहते हैं। कर्म के मूलतः दो भेद हैं –

1. **द्रव्य कर्म–** ज्ञानावरणादि आठ प्रकार के कर्म द्रव्यकर्म कहलाते हैं।
2. **भावकर्म–** राग–द्वेषादि विकारी भाव भावकर्म कहलाते हैं।

द्रव्यकर्म के आठ भेद निम्न हैं–

1. **ज्ञानावरण कर्म–** जो आत्मा के ज्ञान गुण को प्रकट नहीं होने देता उसे ज्ञानावरण कर्म कहते हैं । जैसे देव प्रतिमा के मुख पर ढका हुआ वस्त्र देव प्रतिमा के दर्शन नहीं होने देता।
2. **दर्शनावरण कर्म–** जो आत्मा के दर्शन गुण को प्रकट नहीं होने देता, उसे दर्शनावरण कर्म कहते हैं। जैसे द्वारपाल राजा के दर्शन नहीं होने देता।
3. **वेदनीय कर्म–** जो सुख–दुख का वेदन (अनुभव) कराता है, वह वेदनीय कर्म है। जैसे – मधुलिप्त तलवार आदि
4. **मोहनीय कर्म–** जो आत्मा के सम्यक्त्व और चरित्र गुण का घात करता है, उसे मोहनीय कर्म कहते हैं। जैसे मदिरा मद्यपायी के विवेक को नष्ट कर देती है।
5. **आयुकर्म–** जो जीव को मनुष्यादि के शरीर में रोककर रखता है वह आयुकर्म है जैसे– पैर में लगी हुई बेड़ियाँ।
6. **नाम कर्म–** जो अनेक प्रकार के शरीर की रचना करता है, वह नामकर्म है। जैसे– चित्रकार (पेन्टर) अनेक प्रकार के चित्र बनाता है।
7. **गोत्रकर्म–** जो जीव को उच्चकुल अथवा नीच कुल में उत्पन्न कराता है, वह गोत्रकर्म है। जैसे– कुम्भकार छोटे–बड़े घड़े तैयार करता है।
8. **अन्तराय–** जो दान, लाभ, भोग, उपभोग एवं वीर्य में बाधा डालता है, वह अन्तराय कर्म है। जैसे– भण्डारी (मुनीम) राजा की आज्ञा होने पर भी अर्थ (धनादि) देने में बाधा डालता है।

घातिया कर्म– जो आत्मा के ज्ञानादि गुणों का घात करते हैं, वे घातिया कर्म कहलाते हैं। घातियाकर्म चार होते हैं–

1. ज्ञानावरण **2. दर्शनावरण**
3. मोहनीय **4. अंतराय**

अघातिया कर्म– जो आत्मा के ज्ञानादि गुणों का घात नहीं करते हैं किन्तु संसार में रोके रखते हैं, वे अघातिया कर्म कहलाते हैं। अघातिया कर्म चार हैं– **1. वेदनीय 2. आयु 3. नाम 4. गोत्र** कर्म की विविध अवस्थाएँ दस प्रकार की होती हैं–

1.कर्म– कर्म परमाणुओं का आत्मप्रदेशों के साथ मिलना बंध है।
2. उदय– द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार कर्मों का फल देना उदय है।
3. सत्त्व– कर्मबन्ध के बाद और फल देने के पूर्व की स्थिति को सत्त्व कहते हैं।
4. उदीरणा– नियत समय से पहले कर्म का उदय में आ जाना उदीरणा है।

5. उत्कर्षण– पूर्वबद्ध कर्मों की स्थिति और अनुभाग में वृद्धि होना उत्कर्षण है।

6. अपकर्षण– पूर्वबद्ध कर्मों की स्थिति और अनुभाग में हानि होना अपकर्षण है।

7. संक्रमण– जिस किसी प्रकृति का दूसरी सजातीय प्रकृति के रूप में परिणमन हो जाना संक्रमण कहलाता है।

8. उपशम– उदय में आ रहे कर्मों के फल देने की शक्ति को कुछ समय के लिए दवा देना अथवा काल विशेष के लिए उन्हें फल देने में अक्षम बना देना उपशम है।

9. निधत्ति– कर्म की जिस अवस्था में उदीरणा और संक्रमण का सर्वथा अभाव हो उसे निधत्ति कहते हैं।

10. निकाचित–कर्म की जिस अवस्था में उत्कर्षण, अपकर्षण, उदीरणा और संक्रमण नहीं किया जा सकता, उसे निकाचित कहते हैं।

(iii) जैन कला के प्रमुख स्मारक

कर्नाटक के जैन स्मारक

कर्नाटक में जैनकला के विभिन्न स्मारक उपलब्ध हैं। ईसा की प्रारम्भिक शताब्दी में यहाँ पर लकड़ी के जैन मन्दिर निर्मित होते थे। कदम्ब के राजा ने हलासी में ईसा की पाँचवीं शताब्दी में लकड़ी का एक जैन मन्दिर बनवाया था। कर्नाटक में गुफा मन्दिर भी हैं जो पहाड़ी की चट्टान को काट–काट कर बनाये गये। बीजापुर के पास एहोल और बादामी में इस प्रकार के मन्दिर हैं। विजयनगर के पास हम्पी में बड़े शिलाखण्डों से एक जैन मन्दिर को बनाया गया है। सुन्दर नक्कासी से युक्त 1000 खम्भों का एक मन्दिर मूड़बद्री कर्नाटक में उपलब्ध है। कर्नाटक के जैन मन्दिरों के सामने सुन्दर मानस्तम्भ बनाने की भी परम्परा रही है। कारकल में एक ही शिला से निर्मित 60 फुट ऊँचा मानस्तम्भ है। मूड़बद्री में मात्र 40 इंच ऊँचा एक मानस्तम्भ है।

जैन मूर्ति कला का कर्नाटक तो मानो संग्रहालय है। मूड़बद्री में पक्की मिट्टी से बनी हुयी जैन मूर्तियाँ हैं तो श्रवणबेलगोला में एक ही पाषाण से निर्मित 57 फुट ऊँची भगवान् बाहुबली की मूर्ति है। कर्नाटक में बाहुबली की मूर्तियाँ अनेक स्थानों पर प्राप्त हैं। इस प्रदेश में पार्श्वनाथ भगवान् की विभिन्न मूर्तियाँ उपलब्ध हैं। बीजापुर में हजार फणों वाली पार्श्वनाथ भगवान् की प्रसिद्ध मूर्ति है। कर्नाटक में जैन कला और पुरातत्त्व की समृद्ध परम्परा है। यहाँ पर कई हजार शिलालेख भी प्राप्त हुये हैं, जिनमें लगभग 600 शिलालेख तो श्रवणबेलगोला में ही उपलब्ध हैं।

श्रवणबेलगोला :

श्रवणबेलगोला का नाम सुनते ही विश्व के एक महान् सांस्कृतिक केन्द्र, धर्म नगरी, कला वैभव के सम्पन्न एक तीर्थस्थल और अधुनातन ज्ञान–विज्ञान के शिक्षा परिसर का चित्र सामने आ जाता है। श्रवणबेलगोला दक्षिण भारत की कला और संस्कृति के रूप में विख्यात हो गया है। इस इक्कीसवीं सदी में जनमत के जमाने में भले ही धर्मप्रिय, कलापारखी जनता ने श्रवणबेलगोला को भारत वर्ष का सांस्कृतिक शिरोमणि–स्थल, भारत के सात आश्चर्यों में से प्रथम आश्चर्य चुना हो, किन्तु यह तीर्थराज सदियों से विश्वपटल पर आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। इसका केन्द्रबिन्दु है– भगवान् बाहुबली की अप्रतिम शान्तिदायनी विशाल एक ही शिलाखण्ड पर निर्मित कलापूर्ण प्रतिमा। श्रवणबेलगोला और यहाँ पर निर्मित इस विश्वप्रसिद्ध देवमूर्ति को

इतना जनप्रिय बनाने का श्रेय किसी एक व्यक्ति, समाज या शासक को नहीं है। अनेक साधनापूर्ण संतों, उदारचित्त शासकों, सरकारों, व्यापारियों, कलाकारों, सेवाभावी नारियों और अनगिनित यात्रियों के सम्मिलित प्रयत्न का फल है– श्रवणबेलगोला का सांस्कृतिक स्वरूप। प्रो प्रेम सुमन जैन ने 'प्राकृत प्रभुदर्शन' पुस्तक में श्रवणबेलगोला का जो परिचय दिया है उससे इस कलाकेन्द्र का यह स्वरूप उजागर होता है–

सांस्कृतिक राजधानी : श्रवणबेलगोला की विशिष्टता है कि यहाँ पिछले तेईस सौ वर्षों से निरन्तर धर्म और कला की क्रियाशीलता बनी हुई है। अतः यह जीवन्त, प्राणप्रतिष्ठित नगरी है। यहाँ श्रेष्ठकला और उदारवादी धर्म दोनों प्रतिष्ठित हैं। यह जैन केन्द्र होने पर भी यहाँ अन्य धर्मों के प्रति संकीर्णता नहीं है। कन्नड़ भाषा और साहित्य तथा उसके साहित्यकारों का श्रवणबेलगोला स्फूर्तिस्थान है। संस्कृत, प्राकृत, मराठी की पाण्डुलिपियाँ, शिलाशासन यहाँ सुरक्षित हुए हैं। विभिन्न विद्याएँ, शिल्प और वाणिज्य यहाँ वृद्धिंगत हैं और श्रमण संस्कृति के आधार स्तम्भ– देव, शास्त्र, गुरु यहाँ प्रतिष्ठित हैं। अतः श्रवणबेलगोला को विद्वानों ने, लेखकों ने कर्नाटक की सांस्कृतिक राजधानी कहा है।

श्रवणबेलगोला को सांस्कृतिक केन्द्र बनाने में यहाँ के कला वैभव के मनोरम हार में कई कड़ियाँ हैं। चिक्कबेट्टा (छोटा पहाड़) संस्कृति का खजाना है, इतिहास की धरोहर है, साधना और श्रद्धा की तपोभूमि है तो दोड्ड बेट्टा (बड़ा पहाड़) विन्ध्यगिरि भगवान् बाहुबली की मनोरम प्रतिमा के साथ अन्य कलात्मक अवशेषों की आधारभूमि है। छोटे से नगर के जिनालयों का अपना महत्त्व है, उनका केन्द्रबिन्दु है– श्रीक्षेत्र का मठ कार्यालय और स्वस्तिश्री चारुकीर्ति भट्टारक जी की साधनाभूमि उनका निवास–स्थान। पूरे श्रवणबेलगोला के चारों ओर कला वैभव बिखरा पड़ा है, जिसका विवेचन विद्वानों ने अपनी कलापूर्ण पुस्तकों में किया है। श्री एस. शेट्टर, डॉ. जी. एस. शिवरुद्रप्पा, डॉ. हम्पा नागराजैय्या, श्रीमती सरयूदोशी, श्री पद्मराज दण्डावती आदि प्रसिद्ध इतिहासविदों ने श्रवणबेलगोला के कण–कण के कला वैभव को उजागर करने का प्रयत्न किया है। कवियों और उपन्यासकारों ने इस पर रोचक साहित्य रचा है। सभी के लेखन का सार यही है कि श्रवणबेलगोला और वहाँ पर स्थित भगवान् बाहुबली की विराट प्रतिमा महान् कलाकारों, महान् आश्रयदाताओं और महान् तपस्वी साहित्यकारों के सम्मिलित पुरुषार्थ का एक सार्थक प्रतिफल है। उनमें प्रमुख हैं– अरिष्टनेमि मूर्तिकार, राज्यमंत्री चामुण्डराय और प्राकृत मनीषी आचार्य नेमिचन्द सिद्धांत शास्त्री।

भगवान् बाहुबली की विशाल प्रतिमा : भगवान् बाहुबली की यह विशाल प्रतिमा एक साधक के अन्तर्जगत् का, निर्मल गुणों का प्रतिबिम्ब है। इस प्रतिमा से बिना कोई शब्द के अहिंसा, त्याग और शान्ति का सन्देश प्रसारित होता रहता है। एक ही शिला से निर्मित यह प्रतिमा राष्ट्र की संगठित अन्तरात्मा का जीता–जागता नमूना है। इस प्रतिमा में विशालता के साथ सौन्दर्य का सम्मिश्रण है। सौन्दर्य–बोध को दर्शकों में जगाने वाली यह प्रतिमा सन्देश दे रही है कि हर प्राणी इतना ही सुन्दर है, अतः वह हिंसा और शोषण के योग्य नहीं है। देश–विदेश में जितना सौन्दर्य–बोध बढ़ेगा, क्रूरता और हिंसा उतनी कम होगी।

भगवान् बाहुबली खुले आकाश में आज हजारों वर्ष बाद भी निर्मल रूप से खड़े हैं, उनका यह खुलापन दर्शकों में विचारों के खुलेपन को आमन्त्रण देकर संकीर्णता को हटाता है। बाहुबली की यह प्रतिमा कालातीत है, क्षेत्रातीत है, शब्दातीत है, यही मुक्त होने का भाव तो दिगम्बरत्व है, जहाँ वर्ण, लिंग आदि की सीमाएँ तिरोहित हो जाती हैं।

निशस्त्रीकरण का संदेश देती प्रतिमा : भगवान् बाहुबली ने केवल बाहर के शस्त्रों को ही नहीं त्यागा था, मात्र युद्ध को अयुद्ध में नहीं बदला था, अपितु भीतर के शस्त्र–क्रोध, मान, माया, लोभ आदि भी निकाल बाहर फेंके थे। निशस्त्रीकरण की यह सही प्रक्रिया है, जिसका संदेश भगवान् बाहुबली की प्रतिमा, हर बारह वर्ष में विश्व को देने का प्रयत्न करती है। यह निशस्त्रीकरण के प्रचार का सबसे कम खर्चीला अभियान है, जिसके प्रयोगकर्ता स्वस्तिश्री चारूकीर्ति भट्टारक स्वामी जी हैं।

विन्ध्यगिरि का कला वैभव : विन्ध्यगिरि, बड़ा पहाड़ भगवान् बाहुबली की प्रतिमा के अलावा भी अपने में बहुत कुछ समेटे हुए है। प्रतिमा के समान ही यह पर्वत भी विस्मयकारी है। यहाँ पर आठ छोटे–बड़े मन्दिर हैं। चार मंडप हैं, दो तालाब हैं, पाँच प्रवेशद्वार हैं, तीन स्तम्भ हैं, दो तोरण हैं और 172 शिलालेख हैं, जो कन्नड़ संस्कृति, मारवाडी–महाजनी, तमिल और मराठी भाषाओं में हैं। यहाँ का चागद कंभ (त्याग स्तम्भ) तो श्रमण संस्कृति का परिचायक ऐतिहासिक दस्तावेज है। अखण्ड बागिलु अर्थात् एक ही पत्थर के द्वार पर बनी गजलक्ष्मी कलाकृति तो देश भर के गजलक्ष्मी की कलाकृतियों में सबसे उत्तम और बड़ी है, जो बेहतरीन गंगकृति है। इन सब कलाकृतियों के दर्शन के बाद भगवान् बाहुबली की विशाल प्रतिमा के दर्शन का लाभ मिलता है।

रत्नत्रय का अपर नाम श्रवणबेलगोला : गोम्मटेश बाहुबली के पादचरणों में पर्वत के प्रवेशद्वार पर स्थित जलाशय कल्याणी सरोवर है। इसे धवल सरोवर भी कहते हैं, जो श्रवणबेलगोला तीर्थ में धवला–जयधवला जैसे महान् ग्रन्थराज की स्मृति में कहा गया। वस्तुतः यह कल्याणी सरोवर का अपना नाम बेलगोला है। इस तीर्थ पर प्राचीन समय से जैन मुनियों–श्रमणों का नाम जुड़ जाने से यह स्थान हो गया श्रवणबेलगोला। और वर्तमान में वास्तव में श्रमणों की पावन उपस्थिति से यह स्थान अपने नाम को सार्थक करता है। अतः श्रवणबेलगोला पर्याय बन गया है–शास्त्र, मुनि और देव के सान्निध्य का। ज्ञान, चारित्र और भक्ति का, रत्नत्रय का अमर नाम है श्रवणबेलगोला।

जुड़वां पहाड़ी चंद्रगिरि :

विन्ध्यगिरि भगवान् बाहुबली की अनुपम प्रतिमा से गौरवशाली है तो उसकी जुड़वां पहाड़ी चंद्रगिरि आचार्य भद्रबाहु और सम्राट चन्द्रगुप्त की तपस्या और समाधिमरण से प्रसिद्ध है। इतिहास बतलाता है कि ईसा पूर्व 300 वर्ष के लगभग पंचम श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु उत्तरभारत से हजारों मुनियों के साथ दक्षिण भारत आये थे। उन्होंने इस चन्द्रगिरी पर्वत पर तपस्या की। यहाँ पर उन्होंने सम्राट चन्द्रगुप्त को दिगम्बर जैन मुनि–दीक्षा प्रदान की। उनकी समाधि भी यहीं पर हुई। चन्द्रगिरी पर प्राप्त सैकड़ों अभिलेख और प्राचीन मंदिर, गुफाएँ आज भारतीय पुरातत्व की अमूल्य ध रोहर हैं। यह जैन संघ के इतिहास की नींव है। यह चन्द्रगिरी प्रारम्भ में चिक्कवेट्टा (छोटा पर्वत) नाम से जाना जाता था। जैन मुनियों की समाधि (मृत्यु) का स्थल होने से इसे कटवप्र (कलवप्पु) = मृत्यु का पर्वत कहा गया। यह चन्द्रगिरि द्राविड वस्तुशैली के चौदह जैन मंदिरों से युक्त है। प्राकृतिक सौन्दर्य का यह दिव्य धाम है।

श्रवणबेलगोला की संस्थाएं/प्रशस्तियाँ

श्रीक्षेत्र श्रवणबेलगोला दक्षिण भारत के प्रमुख जैन केन्द्रों का शिरोमणि केन्द्र है। यहाँ पर प्राचीन ताड़पत्रीय पाण्डुलिपियों के संग्रह के साथ जैनविद्या की पुस्तकों का एक समृद्ध पुस्तकालय भी है। कला की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ, प्रतिमाएँ यहाँ सुरक्षित हैं। जैन इतिहास और पुरातत्व की अमूल्य धरोहर के लिए यह क्षेत्र विख्यात है। यहाँ पर साहित्य, संगीत, कला और प्राकृत भाषा के लिए मूर्धन्य विद्वानों को गोम्मटेश प्रशस्तियाँ प्रदान की जाती हैं।

इस क्षेत्र के कर्मठ पट्टाधीश कर्मयोगी स्वस्तिश्री भट्टारक चारूकीर्ति स्वामी जी ने श्रवणबेलगोला को धर्म, संस्कृति, शिक्षा और सेवा का आदर्श केन्द्र बना दिया है। यहाँ लौकिक शिक्षा के स्कूलों के साथ फार्मेसी कॉलेज, पालिटेक्निक कालेज, इंजीनियरिंग डिग्री कॉलेज भी संचालित हैं। गोम्मटेश्वर गुरूकुल विद्यापीठ में पारम्परिक धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था यहाँ की जा रही है। राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन एवं संशोधन संस्थान, श्रवणबेलगोला शोध की दिशा में सक्रिय है।

1993 में श्रवणबेलगोला में **'राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन एवं संशोधन संस्थान'** का शुभारम्भ राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा के करकमलों से हुआ, जो आज देश के प्रतिष्ठित प्राकृत संस्थान के रूप में विकसित है। इसके अन्तर्गत प्राकृत के प्राचीन ग्रन्थों का संरक्षण, सम्पादन, अनुवाद आदि कार्य हो रहे हैं। आज कर्नाटक में 7–8 सौ विद्यार्थी कन्नड़ माध्यम से प्राकृत का शिक्षण प्राप्त कर रहे हैं। पूरे देश में कन्नड़, हिन्दी एवं अंग्रेजी माध्ययम से प्राकृत के पत्राचार पाठ्यक्रम भी यहाँ संचालित किये गये हैं। प्राकृत का यह प्रचार–प्रसार पुष्ट आधार है– श्रवणबेलगोला में एक **बाहुबली प्राकृत विश्वविद्यालय** की स्थापना किये जाने का, जिसकी सम्पूर्ति 2006 के महामस्तकाभिषेक की उपलब्धि के रूप में होगी।

पश्चिम भारत के कला केन्द्र :

जैन कला के अनेक स्मारक भारत के पश्चिमी भाग में उपलब्ध हैं। राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र में अनेक जैन मन्दिर, मूर्तियाँ और पुरातत्व के स्मारक उपलब्ध हैं। जो कला की दृष्टि सै विशेष महत्त्व के हैं। उनमें से प्रमुख जैन स्मारकों का संक्षिप्त परिचय दृष्टव्य है :–

चित्तौड़गढ़ : चित्तौड़गढ़ शिल्पकला का प्रमुख केन्द है। चित्तौड़गढ़ किले में कई दिगम्बर और श्वेताम्बर मन्दिर उपलब्ध हैं। चित्तौड़गढ़ का जैन कीर्तिस्तम्भ कला का बेजोड़ नमूना है। यह लगभग 75 फुट ऊँचा है और इसका व्यास नीचे 31 फुट है तथा ऊपर जाकर 15 फुट रह जाता है। यह जैन कीर्तिस्तम्भ वि.सं. 952 को पूर्ण किया गया था। इसमें सात मंजिल हैं। इसके चारों कोनों पर तीर्थंकर आदिनाथ की मर्तियाँ हैं और बाहर के भाग में जैन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। यह कीर्तिस्तम्भ दिगम्बर शिल्प है। इसमें लगभग 2000 जिनबिम्ब थे। चित्तौड़ में एक पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर था जिसमें 900 जिनबिम्ब विराजमान थे इससे प्रतीत होता है कि चित्तौड़गढ़ जैनकला का प्रमुख केन्द्र रहा है।

ऋषभदेव केशरिया जी : राजस्थान में उदयपुर शहर से 64 कि.मी. दूर ऋषभदेव ग्राम है वहाँ पर भगवान् ऋषभदेव का प्रसिद्ध मन्दिर है, यहाँ की प्रतिमा श्याम वर्ण की है। जिसको वहाँ के ग्रामवासी काले बाबा भी कहते हैं। इस प्रतिमा पर केशर चढ़ाई जाती है। अतः इस मन्दिर का नाम केशरिया जी के नाम से भी प्रसिद्ध है यद्यपि इस मन्दिर की मूर्ति दिगम्बर ऋषभदेव की मूर्ति है और चरण चौकी पर 16 स्वप्न भी अंकित हैं तथा 24 तीर्थंकरों की भी मूर्तियाँ हैं। इस मन्दिर की पूजा दिगम्बरों के अतिरिक्त श्वेताम्बर जैन और वहाँ के आदिवासी लोग भी करते हैं। मन्दिर के चारों ओर बावन जिनालय भी बने हुये हैं। यहाँ पर भट्टारक संघ की एक गद्दी भी थी जो वर्तमान में संचालित नहीं है।

माउन्टआबू दिलबाड़ा जैन मन्दिर : अजमेर अहमदाबाद रेलमार्ग के आबू रोड स्टेशन से लगभग 30 किमी. दूर दिलवाड़ा नाम का गाँव है। वहाँ से पहाड़ की चोटी पर आबू पर्वत पर विश्वविख्यात जैन मन्दिर है। यहाँ पर पाँच मन्दिर प्रसिद्ध हैं जो संगमरमर के बने हुये हैं। इन मन्दिरों के निर्माता के रूप में मंत्री विमलशाह और वस्तुपाल तेजपाल का प्रमुख हाथ रहा है। विमलशाह ने वि.सं. 1088 में करोड़ों रुपये खर्च करके आदिनाथ का मन्दिर बनवाया था जिसे विमलवसति कहते हैं। वि.सं. 1288 में मंत्री वस्तुपाल और तेजपाल ने नेमिनाथ मन्दिर बनवाया था जो लूनबसहि के नाम से प्रसिद्ध है। माऊन्टआबू में एक दिगम्बर मन्दिर भी है। जिसमें भगवान् आदिनाथ की लगभग 3 फुट ऊँची मूर्ति विराजमान है। इस मूर्ति के साथ अन्य वेदी पर धातु की मूर्तियाँ भी विराजमान हैं। माउन्ट आबू के श्वेताम्बर मन्दिर संगमरमर की कला के बेजोड़ नमूने हैं। इन मन्दिरों को देखने के लिए सारे विश्व से तीर्थयात्री आते रहते हैं।

गिरिनार क्षेत्र : गुजरात प्रदेश में जैनधर्म के अनेक केन्द्र उपलब्ध हैं उनमें गिरिनार, पालीताना विशेष प्रसिद्ध हैं। गिरिनार क्षेत्र कई दृष्टियों से प्रसिद्ध है। आचार्य वीरसेन ने आठवीं शताब्दी में गिरिनार पर्वत को क्षेत्र मंगल कहा है। यहाँ पर भगवान् नेमिनाथ का निर्माण हुआ था। भगवान् नेमिनाथ के जीवन में गिरिनार पर्वत विशेष महत्त्व रखता है। उन्होंने इसी पर्वत पर दीक्षा ली, यहीं पर तपश्चरण किया तथा 56 दिन बाद इसी पर्वत पर केवलज्ञान प्राप्त किया और यहीं से मोक्ष प्राप्त किया। ऐसी मान्यता है इस गिरिनार क्षेत्र पर करोड़ों जैन मुनियों को निर्माण प्राप्त हुआ है। इस पर्वत पर इन्द्र के द्वारा बनाये गये भगवान् नेमिनाथ के चरणचिन्ह उत्कीर्ण किये गये थे और इन्द्र ने भगवान् नेमिनाथ के मूर्ति का भी निर्माण किया था किन्तु अब वह उपलब्ध नहीं है। गिरिनार पर्वत पर अंबिका देवी का भी एक मन्दिर है जो नेमिनाथ की शासन देवी कही जाती है। जैन परम्परा में ऐसी मान्यता है कि चतुर्थ श्रुतकेवली आचार्य गोवर्धन गिरिनार की यात्रा के लिये गये थे। श्रुतकेवली भद्रबाहु ने यहाँ की यात्रा की थी। आचार्य धरसेन भी गिरिनार की चंद्रगुफा में रहते थे और उनकी प्रेरणा से आचार्य पुष्पदंत और भूतवली ने यहाँ पर सिद्धांत ग्रंथों का अध्ययन किया और षट्खण्डागम प्राकृत ग्रंथ के प्रारम्भिक अंश की रचना की। गिरिनार के ऊर्जयन्त और रैवतक गिरि नाम मिलते हैं। वर्तमान में यह दिगम्बर परम्परा का तीर्थराज है।

श्री सिद्धक्षेत्र गिरिनार के पर्वत के ऊपर पाँच टोंक हैं। प्रथम टोंक के पास सहस्रआम्र वन है जहाँ नेमिनाथ ने दीक्षा ली थी। यहाँ 1000 सीढियाँ पर्वत पर जाने के लिये बनी हैं, लेकिन चौथी टोंक और पाँचवी टोंक पर सीढ़ियाँ नहीं हैं। अतः गिरिनार की यात्रा बड़ी कठिन यात्रा मानी जाती है। गिरिनार की तलहटी पर सम्राट अशोक के प्राकृत शिलालेख प्राप्त होने के कारण यह क्षेत्र कला का महत्त्वपूर्ण क्षेत्र भी है।

शत्रुन्जय (पालीताना) : गुजरात प्रदेश में जैन कला का प्रमुख केन्द्र शत्रुन्जयगिरि माना जाता है। मान्यता है कि इस स्थान से राजा युधिष्ठर, भीम, अर्जुन तथा 8 करोड द्रविड़ राजा तपस्या करके मोक्ष गये हैं। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में शत्रुन्जय तीर्थ की मान्यता अन्य सभी तीर्थों से अधिक है। आचार्य जिनप्रभ के अनुसार यहाँ तीर्थंकर नेमिनाथ को छोड़कर शेष तेईस तीर्थंकरों के समवशरण आये थे। यहाँ लाखों मुनियों ने मोक्ष प्राप्त किया है। वाग्भट्ट मंत्री ने लगभग तीन करोड़ मुद्राएँ व्यय करके आदीश्वर मंदिर का निर्माण कराया था, यह पर्वत जैन मन्दिरों का गढ़ है। श्वेताम्बर समाज के लगभग 3500 मन्दिर और देवकुलिकायें शत्रुन्जय में हैं। मंन्दिरों का कला वैभव आकर्षित करने वाला है। शत्रुन्जय तीर्थ पर जाने के लिए पालीताना शहर जाना पड़ता है। वहाँ से एक मील दूरी पर यह शत्रुन्जय पर्वत है। पालीताना शहर में दिगम्बर जैन मन्दिर भी है। शत्रुन्जय पर्वत की चढ़ाई लगभग 4 किमी. की है।

देवगढ़ की जैन कला

उत्तरप्रदेश के झांसी जिले में ललितपुर से 31 किमी. दूर वेतवा नदी के किनारे देवगढ़ का नाम प्राचीन समय में लुवच्छगिरि था किन्तु 12वीं, 13वीं शताब्दी में इस स्थान का नाम देवगढ़ पड़ गया। इस सम्बन्ध में अनेक कारण दिये जाते हैं। यहाँ पर देववंश का शासन होने से इसका नाम देवगढ़ पड़ा। कुछ लोग कहते हैं कि यहाँ के भट्टारकों के नाम के अंत में देव शब्द आता था उसके कारण यह देवगढ़ के रूप में प्रसिद्ध हुआ। इस स्थान पर अनेक देवमूर्तियाँ प्राप्त हुयी हैं इस कारण से इसे देवगढ़ कहना अधिक उचित है।

देवगढ़ में हिन्दु और जैन परम्परा की अनेक मूर्तियाँ और मन्दिर प्राप्त हुये हैं। यहाँ पर जैनों की सबसे अधिक मूर्तियाँ एक ही स्थान पर उपलब्ध हैं। यहाँ पर छोटे–बड़े लगभग 40 जैन मन्दिर एवं उनके अवशेष उपलब्ध हैं। अधिकांश मन्दिर स्तम्भों के ऊपर निर्मित हुये हैं, जिन पर मूर्तियों का अंकन भी है। मन्दिर संख्या 4, 18 स्तम्भों पर आधारित है। इसमें तीर्थंकरों और उपाध्यायों की मूर्तियाँ हैं। शय्या पर लेटी हुयी तीर्थंकर की माता का अंकन कला की दृष्टि से बेजोड़ है। मन्दिर संख्या 5 में सहस्रकूट चैत्यालय है। मन्दिर संख्या ग्यारह के सामने भगवान् बाहुबली की ग्यारहवीं शताब्दी की मूर्ति है जो अपने ढंग की अनोखी है। मन्दिर संख्या 12 देवगढ़ का प्रमुख मन्दिर माना जाता है। इसमें भगवान् शान्तिनाथ की 12 फुट ऊँची खडगासन प्रतिमा है। इसमें एक ज्ञान शिलालेख भी प्राप्त हुआ है जो 18 भाषाओं और लिपियों में लिखा हुआ है। मन्दिर संख्या 13 में अनेक शिलापट्ट और मूर्तियाँ हैं। उनमें 18 प्रकार की केशकला के नमूने प्राप्त होते हैं जो देश में कहीं नहीं मिलते।

देवगढ़ से लगभग छोटे—बड़े 300 अभिलेख प्राप्त होते हैं, जिनमें वि.सं. 919 का प्राचीन अभिलेख है। यहाँ के सभी मन्दिर पाषाण से बने हुये हैं जिनमें चूने और गारे का कोई उपयोग नहीं हुआ है। मन्दिर संख्या 15 में भगवान् नेमिनाथ की मूर्तियाँ सबसे अधिक सुन्दर मानी गयी हैं। देवगढ़ में तीर्थंकर मूर्तियों के अतिरिक्त देव और देवियों की मूर्तियाँ, यक्षणियों की मूर्तियाँ, साधु और साध्वियों की मूर्तियाँ भी प्राप्त हुयी हैं।

खजुराहो की जैन कला

मध्यप्रदेश के छतरपुर जिले में खजुराहो नाम का एक छोटा सा गाँव है, जो अपने कलापूर्ण मन्दिरों के लिये विश्व भर में प्रसिद्ध है। चन्देल कालीन शिल्पकला का उदाहरण खजुराहो के मन्दिर और मूर्तियों में मिलता है। खजुराहो की कला 9वीं से 12वीं शताब्दी के बीच की मानी जाती है। यहाँ पर हिन्दु और जैन दोनों धर्मों के प्रसिद्ध मन्दिर हैं। जैन मन्दिरों का समूह खजुराहो के दक्षिणी समूह में है। उनमें घण्टई मन्दिर विशेष रूप से प्रसिद्ध है। यह मन्दिर स्तम्भों पर घण्टा और जंजीर या सांकल के अलंकरण से युक्त है। इसलिये इसका नाम घण्टई मन्दिर प्रसिद्ध है। इसका निर्माण 10वीं शताब्दी में हुआ था। इस मन्दिर में चौबीस खम्भे थे जिनमें से वर्तमान में बीस उपलब्ध हैं। इन खम्भों पर साधुओं, विद्याधरों एवं मिथुनों की मूर्तियाँ बनी हुई हैं। इस मन्दिर के महामण्डप का प्रवेशद्वार कला की दृष्टि से दर्शनीय है।

खजुराहो गाँव के दक्षिण पूर्व में भी जैन मन्दिरों का एक समूह है। उनमें शान्तिनाथ का मन्दिर विशेष प्रसिद्ध है जो लगभग 11वीं शताब्दी में बनाया गया था। इसमें भगवान् शान्तिनाथ की 16 इंच ऊँची प्रतिमा विराजमान है। मन्दिर में अन्य भी कई मूर्तियाँ हैं। मन्दिर संख्या दो में भगवान् महावीर की मूर्ति है। मन्दिर संख्या चार में भगवान् पार्श्वनाथ की सुन्दर प्रतिमा है। लगभग पन्द्रह मन्दिर इस समूह में हैं। तीर्थंकरों मूर्तियों के अतिरिक्त नृत्य और वाद्य में लीन अनेक देवियों की मूर्तियाँ दर्शनीय है। खजुराहो में मन्दिर संख्या पच्चीस भगवान् पार्श्वनाथ का मन्दिर है जो सबसे विशाल और सुन्दर है। यह मन्दिर जैनकला और शिल्प को दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता है। विदेशी विद्वानों ने इस पार्श्वनाथ मन्दिर की बहुत प्रशंसा की है। इसका निर्माण लगभग 10वीं शताब्दी में हुआ है। इस मन्दिर की बाहर की दीवारों पर अनेक मूर्तियों का अंकन है जो खजुराहो की प्रसिद्ध नर्तकीयों की मूर्तियाँ कही जाती हैं। खजुराहो में जैनकला की सुरक्षा हेतु एक जैन संग्रहालय भी बनाया गया है जो कला की दृष्टि से दर्शनीय है।

इस प्रकार पूरे भारत वर्ष एवं विदेश में जैनकला के अन्य कई प्रमुख केन्द्र हैं, जो जैन कला की समृद्धि की सूचना देते हैं।

> **जंह ते न पिअं दुक्खं एमेव सव्वजीवाणं न पिअं दुक्खं।**
>
> जैसे तुम्हारे अपने लिए दुःख प्रिय नहीं है इसी प्रकार दूसरे सब जीवों के लिए दुःख प्रिय नहीं है।

प्राकृत डिप्लोमा

(पत्राचार पाठ्यक्रम)

READING MATERIAL

प्रश्नपत्र- द्वितीय

प्राकृत व्याकरण, शिलालेख एवं सिद्धान्त

(पाठ्यक्रम SYLLABUS)

(क) प्राकृत रचना अभ्यास –

प्राकृत काव्यमंजरी– 1 से 8 (पाठ) 57–90

(ख)अशोक के गिरनार अभिलेख–(प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय) 91

(ग) प्राकृत कृतियों का परिचय

1. आचार्य भक्ति (आचार्य कुन्दकुन्द) 94
2. अष्टपाहुड गाथा– (1–22) 96

(घ) प्राकृत सिद्धांत ग्रंथ

1. समणसुत्तं – गाथा 1–24 100
2. वसुनंदिश्रावकाचार– (चयनित 1–37 गाथाएँ) 104

(द्यूत–मद्य–मांस– चौर्य– दोष निवारण)

(क) प्राकृत व्याकरण- प्राकृत काव्यमंजरी के पाठ – १ से ८ तक

पाठ १ : सर्वनाम

(क) सर्वनाम (उत्तम पुरुष) प्रथमा विभक्ति

उदाहरण वाक्य : अहं = मैं

एकवचन

अहं पातो जग्गामि	=	मैं प्रातःकाल जागता/जागती हूँ।
अहं पइदिणं पढामि	=	मैं प्रतिदिन पढ़ता/पढती हूँ।
अहं सया खेलामि	=	मैं सदा खेलता/खेलती हूँ।
अहं अईव हसामि	=	मैं बहुत हंसता/हंसती हूँ।
अहं खिप्पं चलामि	=	मैं शीघ्र चलता/चलती हूँ।
अहं सइ जिमामि	=	मैं एक बार जीमता/जीमती हूँ।
अहं अप्पं बोल्लामि	=	मैं थोड़ा बोलता/बोलती हूँ।
अहं मुहु पुच्छामि	=	मैं बार–बार पूछता/पूछती हूँ।
अहं सम्मं जाणामि	=	मैं भली प्रकार जानता/जानती हूँ।
अहं सुहं सयामि	=	मैं सुखपूर्वक सोता/सोती हूँ।

अम्हे = हम दोनों/हम सब

बहुवचन

अम्हे पातो जग्गामो	=	हम दोनों/हम सब प्रातः काल जागते हैं।
अम्हे पइदिणं पढामो	=	हम सब प्रतिदिन पढ़ते/पढ़ती हैं।
अम्हे सया खेलामो	=	हम सब सदा खेलते/खेलती हैं।
अम्हे अईव हसामो	=	हम सब बहुत हँसते/हँसती हैं।
अम्हे खिप्पं चलामो	=	हम दोनों सीघ्र चलते हैं।
अम्हे सइ जिमाओ	=	हम सब एक बार जीमते हैं।
अम्हे अप्पं बोल्लामो	=	हम सब थोड़ा बोलते हैं।
अम्हे मुहु पुच्छामो	=	हम दोनों बार–बार पूछते हैं।
अम्हे सम्मं जाणामो	=	हम सब भली प्रकार जानते हैं।
अम्हे सुहं सयामो	=	हम सब सुखपूर्वक सोते हैं।

(ख) सर्वनाम (मध्यम पुरुष) प्रथमा विभक्ति

उदाहरण वाक्य : तुमं = तुम/तू

एकवचन

तुमं पातो जग्गसि	=	तुम प्रातः काल जागते/जागती हो।
तुमं पइदिणं पढसि	=	तुम प्रतिदिन पढ़ते/पढ़ती हो।
तुमं सया खेलसि	=	तुम सदा खेलते/खेलती हो।
तुमं अईव हससि	=	तुम बहुत हँसते/हँसती हो।
तुमं खिप्पं चलसि	=	तुम शीघ्र चलते/चलती हो।
तुमं सइ जिमसि	=	तुम एक बार जीमते/जीमती हो।
तुमं अप्पं बोल्लसि	=	तुम थोड़ा बोलते/बोलती हो।
तुमं मुहु पुच्छसि	=	तुम बार–बार पूछता/पूछती हो।
तुमं सम्मं जाणसि	=	तुम भली प्रकार जानते हो।
तुमं सुहं सयसि	=	तुम सुखपूर्वक सोते–सोती हो।

तुम्हे = तुम दोनों/तुम सब

बहुवचन

तुम्हे पातो जग्गित्था	=	तुम दोनों प्रातःकाल जागते/जागती हो।
तुम्हे पइदिणं पढित्था	=	तुम सब प्रतिदिन पढ़ती हो।
तुम्हे सया खेलित्था	=	तुम दोनो सदा खेलते/खेलती हो।
तुम्हे अईव हसित्था	=	तुम सब बहुत हँसते हो।
तुम्हे खिप्पं चलित्था	=	तुम सब शीघ्र चलते/चलती हो।
तुम्हे सइ जिमित्था	=	तुम दोनों एक बार जीमते हो।
तुम्हे अप्पं बोल्लित्था	=	तुम सब थोडा बोलते/बोलती हो।
तुम्हे मुहु पुच्छित्था	=	तुम सब बार–बार पूछते हो।
तुम्हे सम्मं जाणित्था	=	तुम दोनो भली प्रकार जानते हो।
तुम्हे सुहं सयित्था	=	तुम सब सुखपूर्वक सोते हो।

(ग) सर्वनाम (अन्य पुरुष पुल्लिग) प्रथमा विभक्ति

उदाहरण वाक्य : **सो**= वह, **इमो**= यह, **को**= कौन

एकवचन

सो पातो जग्गइ	=	वह प्रातःकाल जागता है।
सो पइदिणं पढइ	=	वह प्रतिदिन पढ़ता है।
सो सया खेलइ	=	वह सदा खेलता है।
इमो अईव हसइ	=	यह बहुत हँसता है।
इमो खिप्पं चलइ	=	यह शीघ्र चलता है।
इमो सइ जिमइ	=	यह एक बार जीमता/खाता है।
को अप्पं बोल्लइ	=	कौन थोड़ा बोलता है ?
को मुहु पुच्छइ	=	कौन बार–बार पूछता है ?
को सम्मं जाणइ	=	कौन भली प्रकार जानता है ?
सो सुहं सयइ	=	वह सुखपूर्वक सोता है।

ते = वे, **इमे** = ये, **के** = कौन

बहुवचन

ते पातो जग्गन्ति	=	वे प्रातःकाल जागते हैं।
ते पइदिणं पढन्ति	=	वे प्रतिदिन पढ़ते है।
ते सया खेलन्ति	=	वे सदा खेलते हैं।
इमे अईव हसन्ति	=	वे बहुत हँसते हैं।
इमे खिप्पं चलन्ति	=	ये शीघ्र चलते हैं।
इमे सइ जिमन्ति	=	ये एक बार जीमते हैं।
के अप्पं बोल्लन्ति	=	कौन थोड़ा बोलते हैं ?
के मुहु पुच्छन्ति	=	कौन बार–बार पूछते हैं ?
के सम्मं जाणन्ति	=	कौन भली प्रकार जानते हैं ?
ते सुहं सयन्ति	=	वे सुखपूर्वक सोते हैं।

(घ) सर्वनाम (अन्य पुरुष स्त्रीलिंग) प्रथमा विभक्ति

उदाहरण वाक्य : **सा**= वह, **इमा**= वह, **का**= कौन

एकवचन

सा पातो जग्गइ	=	वह प्रातःकाल जागती है।
सा पइदिणं पढइ	=	वह प्रतिदिन पढ़ती है।
सा सया खेलइ	=	वह सदा खेलती है।
इमा अईव हसइ	=	यह बहुत हँसती है।
इमा खिप्पं चलइ	=	यह शीघ्र चलती है।
इमा सइ जिमइ	=	यह एक बार जीमती है।
का अप्पं बोल्लइ	=	कौन थोड़ा बोलती है ?
का मुहु पुच्छइ	=	कौन बार–बार पूछती है ?
का सम्मं जाणइ	=	कौन भली प्रकार जानती है ?
सा सुहं सयइ	=	वह सुखपूर्वक सोती है।

ताओ = वे, **इमाओ** = ये, **काओ** = कौन

बहुवचन

ताओ पातो जग्गन्ति	=	वे (स्त्रियाँ) प्रातःकाल जागती हैं।
ताओ पइदिणं पढन्ति	=	वे प्रतिदिन पढ़ती है।
ताओ सया खेलन्ति	=	वे सदा खेलती हैं।
इमाओ अईव हसन्ति	=	ये बहुत हँसती हैं।
इमाओ खिप्पं चलन्ति	=	ये शीघ्र चलती हैं।
इमाओ सइ जिमन्ति	=	ये एक बार जीमती हैं।
काओ अप्पं बोल्लन्ति	=	कौन थोड़ा बोलती हैं ?
काओ मुहु पुच्छन्ति	=	कौन बार–बार पूछती हैं ?
काओ सम्मं जाणन्ति	=	कौन भली प्रकार जानती हैं ?
ताओ सुहं सयन्ति	=	वे सुखपूर्वक सोती हैं।

(ङ.) मिश्रित प्रयोग (सर्वनाम पाठ)

अहं छत्तो अत्थि	=	मैं छात्र हूँ।
अहं अत्थ पढामि	=	मैं यहाँ पढ़ता हूँ।
तुमं बाला अत्थि	=	तुम बालिका हो।
तुमं तत्थ खेलसि	=	तुम वहाँ खेलती हो।
तुमं अत्थ सेवसि	=	तुम यहाँ सेवा करते हो।
सो आयरियो अत्थ	=	वह आचार्य है।
सो तत्थ लिहइ	=	वह वहाँ लिखता है।
सो सया पढइ	=	वह सदा पढ़ता है।
सा माआ अत्थि	=	वह माता है।

सा पइदिणं सेवइ	=	वह प्रतिदिन सेवा करती है।
सा अप्पं बोल्लइ	=	वह थोड़ा बोलती है।
इमो सीसो पढइ	=	यह शिष्य पढ़ता है।
इमो पुरिसो नमइ	=	यह आदमी नमन करता है।
इमो छत्तो खेलइ	=	यह छात्र खेलता है।
को जणो गच्छइ	=	कौन व्यक्ति जाता है ?
को नरो पुच्छइ	=	कौन आदमी पूछता है ?
को बालओ नमइ	=	कौन बालक नमन करता है ?
इमा बाला नमइ	=	यह बालिका नमन करती है।
इमा छत्ता पढइ	=	यह छात्रा पढ़ती है।
इमा कन्ना खेलइ	=	यह कन्या खेलती है।
अम्हे तत्थ पढामो	=	हम वहाँ पढ़ते हैं।
तुम्हे तत्थ खेलित्था	=	तुम सब वहाँ खेलते हो।
ते सया हसन्ति	=	वे सदा हँसते हैं।
ताओ खिप्पं चलन्ति	=	वे सब (स्त्रियाँ) शीघ्र चलती है।
इमाओ अप्पं बोल्लन्ति	=	ये सब (स्त्रियाँ) थोडा बोलती हैं।
काओ ण पढन्ति	=	कौन (स्त्रियाँ) नहीं पढ़ती हैं ?

अभ्यास

(क) सर्वनाम लिखो

.... जग्गामि।
.... हसइ।
.... चलित्था।
.... बोल्लन्ति।
.... सयामो।
.... पुच्छसि।

(ख) क्रियारूप लिखो

सार .... (पढ)
अहं .... (जिम)
ते .... (खेल)
तुम्हे .... (जाण)
तुमं .... (पुच्छ)
अम्हे .... (चल)

(क) अव्यय लिखो

अहं ....तत्थ बोल्लामि।
अम्हे ....सयामो।
तुमं ....हससि।
तुम्हे ....पुच्छित्था।
सो ....खेलइ।
ते ....पढन्ति।
सा ....चलइ।
काओ ....जाणन्ति ?
इमो ....गच्छइ।
को ....जिमइ ?

(ख) प्राकृतरूप लिखो

वह ....सो ....(त) पु.
तुम ....(तुम्ह)
मैं ....(अम्ह)
वे ....(त) पु.
हम सब ....(अम्ह)
तुम दोनों ....(तुम्ह)
वह ....(ता, स्त्री.)
तुम सब ....(तुम्ह)
यह ....(इम) पु.
कौन ....(का) स्त्री.

प्राकृत में अनुवाद करो :

हम सदा पढ़ते हैं। वह सुखपूर्वक सोता है। तुम एक बार जीमते हो। मै थोड़ा बोलता हूँ। तुम सब बहुत हँसते हो। वह छात्र नमन करता है। यह कन्या पढ़ती है। कौन छात्र खेलता है ? हम दोनों वहाँ जाते हैं। वे दोनों यहाँ खेलते हैं। वे स्त्रियाँ वहाँ जाती हैं।

नियम : सर्वनाम (पुल्लिंग, स्त्रीलिंग) प्रथमा विभक्ति

सर्वनाम (पु. स्त्री.)

नियम 1 : प्राकृत में **अम्ह** (मैं) एवं **तुम्ह** (तुम) सर्वनाम के रूप पुल्लिंग एवं स्त्रीलिंग में प्रथमा विभक्ति में इस प्रकार बनते हैं–

एकवचन – **अहं, तुमं** बहुवचन– **अम्हे, तुम्हे**

सर्वनाम (पु.)

नियम 2 : **त** (वह) सर्वनाम का प्रथमा विभक्ति एकवचन में **सो** तथा बहुवचन में **ते** रूप बन जाता है।

नियम 3 : **इम** (यह) तथा **क** (कौन) सर्वनाम के प्रथमा विभक्ति के एकवचन में **ओ** तथा बहुवचन में **ए** प्रत्यय लगाकर ये रूप बनते हैं–

इमो, इमे **को, के**

सर्वनाम (स्त्री.)

नियम 4 : **ता** (वह) सर्वनाम के प्रथमा विभक्ति एकवचन में **सा** रूप तथा बहुवचन में ओ प्रत्यय लगाकर **ताओ** रूप बनता है।

नियम 5 : **इमा** (यह) एवं **का** (कौन) सर्वनाम के प्रथमा विभक्ति एकवचन और बहुवचन में ये रूप बनते हैं।

इमा, इमाओ **का, काओ**

निर्देश : पिछले उदाहरण–वाक्यों के पाठों में जो आपने सर्वनाम के रूप पढ़ हैं उन्हें इस प्रकार याद कर लें–

वचन	**प्रथम पुरुष**	**मध्यम पुरुष**	**अन्य पुरुष पु.**	**अन्य पुरुष स्त्री.**
ए.व.	अहं	तुम	सो, इमो, को	सा, इमा, का
ब.व.	अम्हे	तुम्हे	ते, इमे, के	ताओ, इमाओ

नवीन शब्द :– अव्यय

ऊपर आपने निम्नांकित अव्यय पढ़े हैं, जिनमें कुछ परिवर्तन नहीं होता है–

पातो = प्रातः	पइदिणं = प्रतिदिन	सया = सदा
अईव = अधिक	खिप्पं = शीघ्र	सइ = एक बार
मुहु = बार–बार	सम्मं = अच्छी तरह	सुहं = सुखपूर्वक
अप्पं = थोड़ा	अत्थ = यहाँ	तत्थ = वहाँ

पाठ २ : संज्ञा शब्द

(क) संज्ञा शब्द (पुल्लिंग) प्रथमा विभक्ति

उदाहरण वाक्य : **बाल, सुहि, गुरु**

एकवचन

बालो कत्थ पढइ	=	बालक कहाँ पढता है ?
बालो अत्थ पढइ	=	बालक यहाँ पढ़ता है।
बालो कया खेलइ	=	बालक कब खेलता है ?
बालो दाणिं खेलइ	=	बालक इस समय खेलता है।
सुही तत्थ बोल्लइ	=	मित्र वहाँ बोलता है।
सुही ण सयइ	=	मित्र नहीं सोता है।
सुही किं जाणइ	=	मित्र क्या जानता है ?
गुरू खिप्पं चलइ	=	गुरु शीघ्र चलता है।
गुरू सव्वं जाणइ	=	गुरु सब जानता है।
गुरू तत्थ लिहइ	=	गुरु वहाँ लिखता है।

बहुवचन

बाला कत्थ पढन्ति	=	बालक कहाँ पढते हैं ?
बाला अत्थ पढन्ति	=	बालक यहाँ पढ़ते हैं।
बाला कया खेलन्ति	=	बालक कब खेलते हैं ?
बाला दाणिं खेलन्ति	=	बालक इस समय खेलते हैं।
सुहिणो तत्थ बोलन्ति	=	मित्र वहाँ बोलते हैं।
सुहिणो ण सयन्ति	=	मित्र नहीं सोते हैं।
सुहिणो किं जाणन्ति	=	मित्र क्या जानते हैं ?
गुरुणो खिप्पं चलन्ति	=	गुरु शीघ्र चलते हैं।
गरुणो सव्वं जाणन्ति	=	गुरु सब जानते हैं।
गुरुणो तत्थ लिहन्ति	=	गुरु वहाँ लिखते हैं।

(ख) संज्ञा शब्द (स्त्रीलिंग) प्रथमा विभक्ति

उदाहरण वाक्य : **बाला, जुवइ, बहू**

एकवचन

बाला पातो जग्गइ	=	बालिका प्रातःकाल जागती है।
बाला सया पढइ	=	बालिका सदा पढ़ती है।
बाला किं पुच्छइ	=	बालिका क्या पूछती है ?
जुवई अत्थ हसइ	=	युवती यहाँ हसती है।
जुवई तत्थ जिमइ	=	युवती वहाँ जीमती है।
जुवई अप्पं बोल्लइ	=	युवती थोड़ा बोलती है।
बहू ण खेलइ	=	बहू नहीं खेलती है।
बहू अईव जाणइ	=	बहू बहुत जानती है।
बहू कया सयइ	=	बहू कब सोती है।
बाला खिप्पं चलइ	=	बालिका शीघ्र चलती है।

बहुवचन

बालाओ पातो जग्गन्ति	=	बालिकाएँ प्रातःकाल जागती हैं।
बालाओ सया पढन्ति	=	बालिकाएँ सदा पढ़ती हैं।
बालाओ किं पुच्छन्ति	=	बालिकाएँ क्या पूछती हैं ?
जुवईओ अत्थ हसन्ति	=	युवतियाँ यहाँ हसती हैं।
जुवईओ तत्थ जिमन्ति	=	युवतियाँ वहाँ जीमती हैं।
जुवईओ अप्पं बोल्लन्ति	=	युवतियाँ थोड़ा बोलती हैं।
बहूओ ण खेलन्ति	=	बहुएँ नहीं खेलती हैं।
बहूओ अईव जाणन्ति	=	बहुएँ बहुत जानती हैं।
बहूओ कया सयन्ति	=	बहुएँ कब सोती हैं।
बालाओ खिप्पं चलन्ति	=	बालिकाएँ शीघ्र चलती हैं।

(ग) संज्ञा एवं सर्वनाम (नपुं.) प्रथमा विभक्ति

उदाहरण वाक्य : **मित्त, घर, पोत्थअ, वारि, वत्थु**

एकवचन

मित्तं कत्थ अत्थि	=	मित्र कहाँ हैं ?
घरं तत्थ अत्थि	=	घर वहाँ है।
पोत्थअं अत्थ अत्थि	=	पुस्तक यहाँ है।
वारिं कत्थ अस्थि	=	पानी कहाँ है ?
वत्थुं ण अत्थि	=	वस्तुएँ नहीं है।

बहुवचन

मित्ताणि कत्थ सन्ति	=	मित्र कहाँ हैं। ?
घराणि तत्थ सन्ति	=	घर कहाँ है।
पोत्थआणि अत्थ सन्ति	=	पुस्तक कहाँ हैं।
वारिणि कत्थ सन्ति	=	पानी कहाँ हैं।
वत्थूणि ण सन्ति	=	वस्तु नहीं हैं।

त, इम, क (नपुं.)

एकवचन

तं मित्तं अत्थि	=	वह मित्र है।
तं घरं अत्थि	=	वह घर है।
इमं पोत्थअं अत्थि	=	यह पुस्तक है।
इमं वत्थु अत्थि	=	यह वस्तु है।
किं मित्तं अत्थि	=	कौन मित्र है ?

बहुवचन

ताणि मित्ताणि सन्ति	=	वे मित्र हैं।
ताणि घराणि सन्ति	=	वे घर हैं।
इमाणि पोत्थआणि सन्ति	=	ये पुस्तकें हैं।
इमाणि वत्थूणि सन्ति	=	ये वस्तुएँ हैं।
काणि मित्ताणि सन्ति	=	कौन मित्र हैं ?

(घ) मिश्रित प्रयोग (सर्वनाम एवं संज्ञाएँ)

उदाहरण वाक्य :		सर्वनाम एवं संज्ञाएँ (पु., स्त्री. नपुं.)
		एकवचन
सो बालो पढइ	=	वह बालक पढ़ता है।
इमो सुही खेलइ	=	यह मित्र खेलता है।
को गुरू पुच्छइ	=	कौन गुरु पूछता है ?
सा बाला जग्गइ	=	वह बालिका जागती है।
इमा जुवई सयइ	=	यह युवती सोती है।
का बहू हसइ	=	कौन बहु हँसती है ?
तं मित्तं बोल्लइ	=	वह मित्र बोलता है।
इमं मित्तं खेलइ	=	यह मित्र खेलता है ?
किं मित्तं पढइ	=	कौन मित्र पढ़ता है।
किं पोत्थअं तत्थ अत्थि	=	कौन पुस्तक वहाँ है ?
		बहुवचन
ते बाला पढन्ति	=	वे बालक पढते हैं।
इमे सुहिणो खेलन्ति	=	ये मित्र खेलते हैं।
के गुरूणो पुच्छन्ति	=	कौन गुरु पूछते हैं ?
ताओ बालाओ जग्गन्ति	=	वे बालिकाएँ जागती हैं।
इमाओ जुवईओ सयन्ति	=	ये युवतियाँ सोती हैं।
काओ बहूओ हसन्ति	=	कौन बहुएँ हँसती हैं।
ताणि मित्ताणि बोल्लन्ति	=	वे मित्र बोलते हैं।
इमाणि मित्ताणि खेलन्ति	=	ये मित्र खेलते हैं।
काणि मित्ताणि पढन्ति	=	कौन मित्र पढ़ते हैं।
काणि पोत्थआणि तत्थ सन्ति	=	कौन पुस्तकें वहाँ हैं ?

नियम : संज्ञा शब्द (पु., स्त्री., नपुं.) प्रथमा विभक्ति

पुल्लिग शब्द :

नियम 6 : पुरुषवाचक संज्ञा शब्दों में अकारान्त शब्दों के आगे प्रथमा विभक्ति के एकवचन में **ओ** तथा बहुवचन में आ प्रत्यय लगता है। जैसे–

बाल+ओ=**बालो** (ए.व.) बाल+आ=**बाला** (ब.व.)
पुरिस+ओ=**पुरिसो** (ए.व.) पुरिस+आ=**पुरिसा** (ब.व.)
देव+ओ=**देवो** (ए.व.) देव+आ=**देवा** (ब.व.)

नियम 7 : इकारान्त एवं उकारान्त शब्दों के **इ** एवं **उ** प्रथमा विभक्ति के एक वचन में दीर्घ हो जाते है तथा बहुवचन में मूल शब्दों में **णो** प्रत्यय जुड़ जाता है। जैसे–

इकारान्त		उकारान्त	
ए.व.	**ब.व.**	**ए.व.**	**ब.व.**
सुहि=**सुही**	सुहिणो	गुरु=**गुरू**	गुरुणो
कवि=**कवी**	कविणो	सिसु=**सिसू**	सिसुणो
हत्थि=**हत्थी**	हत्थिणो	साहु=**साहू**	साहुणो

स्त्रीलिंग शब्द

नियम 8 : स्त्रीलिंग आकारान्त शब्द प्रथमा विभक्ति के एकवचन में यथावत् रहते हैं तथा बहुवचन में उनमें ओ प्रत्यय जुड़ जाता है। जैसे–

बाला = बाला (ए.व.) बाला + ओ = बालाओ (ब.व.)
माला = माला (ए.व.) माला + ओ = मालाओ (ब.व.)

नियम 9 : इकारान्त एवं उकारान्त शब्दों के **इ** एवं **उ** प्रथमा विभक्ति के एकवचन में दीर्घ हो जाते हैं। दीर्घ **ई ऊ** दीर्घ ही रहते हैं तथा बहुवचन में मूल शब्द में दीर्घ होने के बाद औ प्रत्यय जुड़ जाता है।

नपुंशकलिंग शब्द :

नियम 10 : नपुंसकलिंग संज्ञा एवं सर्वनामों के आगे प्रथमा विभक्ति के एकवचन में अनुस्वार (ं) प्रत्यय लगता है तथा बहुवचन में **अ,इ, उ** दीर्घ होने के बाद **णि** प्रत्यय लगता है। क सर्व. एकवचन में किं होता है।

(ड.) मिश्रित प्रयोग (संज्ञा पाठ)

एकवचन

बालो खिप्पं चलइ	=	बालक शीघ्र चलता है।
सुही किं ण जाणइ	=	मित्र क्या नहीं जानता है ?
गुरू कत्थ गच्छइ	=	गुरु कहाँ जाता है ?
बाला सया पढइ	=	बालिका सदा पढती है।
जुवई किं पुच्छइ	=	युवति क्या पूछती है ?
बहू तत्थ गच्छइ	=	बहू वहाँ जाती है।
मित्तं अत्थ लिहइ	=	मित्र यहाँ लिखता है।
घरं तत्थ अत्थि	=	घर वहाँ है।
इमं पोत्थअं अत्थि	=	यह पुस्तक है।
तं मित्तं अत्थि	=	वह मित्र है।

बहुवचन

छत्ता तत्थ पढन्ति	=	छात्र वहाँ पढ़ते हैं।
सुहिणो अत्थ बोल्लन्ति	=	मित्र यहाँ बोलते हैं।
गुरुणो सव्वं जाणन्ति	=	गुरु सब जानते हैं।
बालाओ अप्पं बोल्लन्ति	=	बालिकाएँ थोडा बोलती हैं।
जुवईओ पातो जग्गन्ति	=	युवतियाँ प्रातः जागती हैं।
मित्ताणि ण गच्छन्ति	=	मित्र नहीं जाते हैं।
वत्थूणि कत्थ सन्ति	=	वस्तुएँ कहाँ हैं ?
ताणि घराणि सन्ति	=	वे घर हैं।
के नरा गच्छन्ति	=	कौन मनुष्य जाते हैं ?
बहूओ अत्थ नमन्ति	=	बहुएँ यहाँ नमन करती हैं।

नये शब्द सीखें

छत्त	=	छात्र	सिक्ख	=	सीखना
कुलवइ	=	कुलपति	उवदिस	=	उपदेश देना
सिसु	=	बच्चा	सोह	=	शोभित होना
मोर	=	मोर	लज्ज	=	लजाना
सीह	=	सिंह	बहिणी	=	बहिन
धेणु	=	गाय	कया	=	कब

अभ्यास

(क) हिन्दी में अनुवाद करो

छत्तो किं पुच्छइ ? बोलो सिक्खइ। कवी लिहइ। कुलवई उवदिसइ। सिसू तत्थ खेलइ। हत्थी गच्छइ। मोरो णच्चइ। सीहो गज्जइ। बहिणी किं करइ ? कमलं अत्थ अत्थि।

(ख) संज्ञा शब्द लिखो :

(सीह).........सीहो.........चलइ
(सिसु)......................हसइ
(बाल)......................गच्छइ
(कवि)......................गच्छन्ति
(जुवइ)......................जग्गन्ति
(सासू)......................पालन्ति

(ग) क्रियारूप लिखो :

कवी..............गच्छइ.........(गच्छ)
निवो........................(हस)
बाला........................(सोह)
बहूओ........................(लज्ज)
गुरुणो........................(पढ)
मित्ताणि........................(पुच्छ)

(घ) शब्द छांटकर लिखो :

(पु.अ.) बाल............. ....
(पु.इ.) सुहि............. ....
(पु.उ.) गुरु............. ....
(नपुं.अ.) मित्त.......... ....

(स्त्री.आ.) बाला ....
(स्त्री.इ.) जुवइ ....
(स्त्री.उ.) धेणु ....
(स्त्री.ऊ.) सासू ....

(ङ.) क्रियाएँ लिखो :

चल = चलना .... = ... = ...
.... = ... = ... = ...
.... = ... = ... = ...

(ङ.) प्राकृत में अनुवाद करो :

छात्र कहाँ पढ़ता है ? बालक यहाँ लिखता है। मोर वहाँ जाता है। गुरु कब बोलता है ? युवती कब पढ़ती है ? मित्र कहाँ रहता है? कमल यहाँ है। पुस्तक वहाँ है। वे घर कहाँ हैं ? कवि वहाँ जाते हैं। वस्तुएँ कहाँ हैं ? बहू थोड़ा जीमती है।

पाठ ३ : क्रियाएँ

(क) क्रियारूप (वर्तमानकाल)

उदाहरण वाक्य : पढ (क्रिया)

उत्तम पुरुष — एकवचन

अहं पढामि	=	मैं पढ़ता हूँ।
अहं खिलामि	=	मैं खेलता हूँ।
अहं चलामि	=	मैं चलता हूँ।

बहुवचन

अम्हे पढामो	=	हम पढ़ते हैं।
अम्हे खेलामो	=	हम खेलते हैं।
अम्हे चलामो	=	हम चलते हैं।

मध्यम पुरुष — एकवचन

तुमं पढसि	=	तुम पढ़ते हो।
तुमं खेलसि	=	तुम खेलते हो।
तुमं चलसि	=	तुम चलते हो।

बहुवचन

तुम्हे पढित्था	=	तुम सब पढ़ते हो।
तुम्हे खेलित्था	=	तुम सब खेलते हो।
तुम्हे चलित्था	=	तुम सब चलते हो।

अन्य पुरुष — एकवचन

सा पढइ	=	वह पढ़ती हैं
मित्तं पढइ	=	मित्र पढ़ता है।
बालो पढइ	=	बालक पढ़ता है।

बहुवचन

ताओ पढन्ति	=	वे पढ़ती है।
मित्ताणि पढन्ति	=	मित्र पढ़ते हैं।
बाला पढन्ति	=	बालक पढ़ते हैं।

(ख) क्रियारूप (भूतकाल)

उदाहरण वाक्य : पढ (क्रिया)+ईअ = पढीअ

उत्तम पुरुष — एकवचन

अहं पढीअ	=	मैंने पढ़ा।
अहं खेलीअ	=	मैंने खेला।
अहं चलीअ	=	मैं चला।

बहुवचन

अम्हे पढीअ	=	हमने पढ़ा।
अम्हे खेलीअ	=	हमने खेला।
अम्हे चलीअ	=	हम चले।

मध्यम पुरुष		**एकवचन**	
	तुमं पढीअ	=	तुमने पढ़ा।
	तुमं खेलीअ	=	तुमने खेला/तुम खेले।
	तुमं चलीअ	=	तुम चले।
		बहुवचन	
	तुम्हे पढीअ	=	तुम सबने पढ़ा।
	तुम्हे खेलीअ	=	तुम सबने खेला।
	तुम्हे चलीअ	=	तुम सब चले।
अन्य पुरुष		**एकवचन**	
	सा पढीअ	=	उस (स्त्री) ने पढ़ा।
	मित्तं पढीअ	=	मित्र ने पढ़ा।
	बालो पढीअ	=	बालक ने पढ़ा।
		बहुवचन	
	ताओ पढीअ	=	उन (स्त्रियों) ने पढ़ा।
	मित्ताणि पढीअ	=	मित्रों ने पढ़ा।
	बाला पढीअ	=	बालकों ने पढ़ा।

(ग) क्रियारूप (भविष्यकाल)

उदाहरण वाक्य :		**पढ + इ + हि = प्रत्यय**	
उत्तम पुरुष		**एकवचन**	
	अहं पढिहिमि	=	मैं पढ़ूँगा।
	अहं खेलिहिमि	=	मैं खेलूँगा।
	अहं चलिहिमि	=	मैं चलूँगा।
		बहुवचन	
	अम्हे पढिहामो	=	हम पढ़ेंगे।
	अम्हे खेलिहामो	=	हम खेलेंगे।
	अम्हे चलिहामो	=	हम चलेंगे।
मध्यम पुरुष		**एकवचन**	
	तुमं पढिहिसि	=	तुम पढ़ोगे।
	तुमं खेलिहिसि	=	तुम खेलोगे।
	तुमं चलिहिसि	=	तुम चलोगे।
		बहुवचन	
	तुम्हे पढिहित्था	=	तुम सब पढ़ोगे।
	तुम्हे खेलिहित्था	=	तुम सब खेलोगे।
	तुम्हे चलिहित्था	=	तुम सब चलोगे।
अन्य पुरुष		**एकवचन**	
	सा पढिहिइ	=	वह (स्त्री) पढ़ेगी।
	मित्तं पढिहिइ	=	मित्र पढ़ेगा।
	बालो पढिहिइ	=	बालक पढ़ेगा।

बहुवचन

ताओ पढिहिन्ति	=	वे (स्त्रियाँ) पढ़ेंगी।
मित्ताणि पढिहिन्ति	=	मित्र पढ़ेंगे।
बाला पढिहिन्ति	=	बालक पढ़ेंगे।

(घ) क्रियारूप (आज्ञा/इच्छा)

उदाहरण वाक्य : **पढ + प्रत्यय**

उत्तम पुरुष **एकवचन**

अहं पढमु	=	मैं पढ़ूँ।
अहं खेलमु	=	मैं खेलूँ।
अहं चलमु	=	मैं चलूँ।

बहुवचन

अम्हे पढमो	=	हम सब पढ़ें।
अम्हे खेलमो	=	हम सब खेलें।
अम्हे चलमो	=	हम सब चलें।

मध्यम पुरुष **एकवचन**

तुमं पढहि	=	तुम पढ़ो।
तुमं खेलहि	=	तुम खेलो।
तुमं चलहि	=	तुम चलो।

बहुवचन

तुम्हे पढह	=	तुम सब पढ़ो।
तुम्हे खेलह	=	तुम सब खेलो।
तुम्हे चलह	=	तुम सब चलो।

अन्य पुरुष **एकवचन**

सा पढउ	=	वह (स्त्री) पढ़े।
मित्तं पढउ	=	मित्र पढ़े।
बालो पढउ	=	बालक पढ़े।

बहुवचन

ताओ पढन्तु	=	वे (स्त्रियाँ) पढ़ें।
मित्ताणि पढन्तु	=	मित्र पढ़ें।
बाला पढन्तु	=	बालक पढ़ें।

(ङ.) आ. ए. एवं ओकारान्त क्रियाएँ

उदाहरण वाक्य : गा, णे, हो + प्रत्यय

एकवचन	वर्तमानकाल	बहुवचन
अहं गामि	मैं गाता हूँ।	अम्हे गामो
तुमं गासि	तुम गाते हो।	तुम्हे गाइत्था
सो गाइ	वह गाता है।	ते गान्ति
	भूतकाल	
अहं गाही	मैंने गाया।	अम्हे गाही
तुमं गाही	तुमने गाया।	तुम्हे गाही
सो गाही	उसने गाया।	ते गाही
	भविष्यकाल	
अहं गाहिमि	मैं गाऊँगा।	अम्हे गाहामो
तुमं गाहिसि	तुम गाओगे।	तुमे आहित्था
सो गाहिइ	वह गायेगा।	ते गाहिन्ति
	आज्ञा / इच्छा	
किं अहं गामु	क्या मैं गाऊँ ?	अम्हे तत्थ गामो
तुमं गाहि	तुम गाओ।	तुम्हे गाह
सो गाउ	वह गाये।	ते गान्तु
	मिश्रित प्रयोग	
अहं णेमि	मैं लाता हूँ।	अम्हे णेमो
तुमं णेसि	तुम लाते हो।	तुम्हे णेइत्था
सो णेइ	वह लेता है।	ते णेन्ति
तत्थ किं होइ	वहाँ क्या होता है ?	तत्थ णच्चाणि होन्ति
सो पाहिइ	वह पियेगा।	ते पाहिन्ति
सो ठाउ	वह ठहरे।	ते ठान्तु
तुमं खासि	तुम खाते हो।	तुम्हे खाइत्था
तुमं किं णेहिसि	तुम क्या लाओगे।	तुम्हे किं णेहित्था

नियम क्रियारूप

क्रियारूप :

नियम 11 प्रत्येक काल की क्रियाओं के अलग–अलग प्रत्यय होते हैं, जो मूल क्रिया में जुड़कर उस काल को बोध कराते हैं। प्रत्ययों को अतिरिक्त कुल मूल क्रियाओं के स्वरों में भी परिवर्तन हो जाता है।

वर्तमान काल :

प्र. पु. **मि** = पढ + मि (ए.व.)	**मो** = पढ + मो (ब. व.)
म. पु. **सि** = पढ + सि (ए.व.)	**इत्था** = पढ + इत्था(ब. व.)
अ. पु. **इ** = पढ + इ (ए.व.)	**न्ति** = पढ + न्ति (ब. व.)

नियम 12 प्रथम पुरुष के प्रत्यय मि, मो अकरान्त क्रिया में जुड़ने के पूर्व क्रिया का अ दीर्घ आ हो जाता है। जैसे –

पढ + मि = पढामि पढ + मो = पढामो

भूतकाल :

नियम 13 अकारान्त क्रियाओं के सभी रूपों में क्रिया में **ईअ** प्रत्यय जुड़ता है। जैसे–

पढ + ईअ = **पढीअ** चल + ईअ = **चलीअ**

नियम 14 आकारान्त आदि क्रियाओं में भूतकाल में ही प्रत्यय जुड़ता है। जैसे– गा + ही = **गाही णेही, होही** आदि।

भविष्यकाल

प्र. पु. **हिमि** = पढ + हिमि (ए.व.) **हामो** = पढ + हामो (ब. व.)
म. पु. **हिसि** = पढ + हिसि (ए.व.) **हित्था** =पढ +हित्था (ब. व.)
अ. पु. **हिइ** = पढ + हिइ (ए.व.) **हिन्ति** = पढ +हिन्ति (ब. व.)

नियम 15 भविष्यकाल के प्रत्यय जुड़ने के पूर्व क्रिया के **अ** को **इ** हो जाता है। जैसे – पढिहिमि, पढिहिसि आदि।

इच्छा / आज्ञा :

प्र. पु. **मु** = पढ + मु (ए.व.) **मो** = पढ + मो (ब. व.)
म. पु. **हि** = पढ + हि (ए.व.) **ह** = पढ + ह (ब. व.)
अ. पु. **उ** = पढ + उ (ए.व.) **न्तु** = पढ + न्त (ब. व)

नियम 16 आकारान्त आदि क्रियाओं में भी इन कालो के यही प्रत्यय जुड़ते हैं। किन्तु उनमें दीर्घ या स्वरों का परिवर्तन नहीं होता है।

अभ्यास

(क) क्रियाओं के अर्थ याद करो :

भण = कहना	**पेस** = भेजना	**कंद** = रोना
चिट्ठ = बैठना	**उट्ठ** = खड़े होना	**गच्छ** = जाना
आगच्छ = आना	**बोल्ल** = बोलना	**सिक्ख** = सीखना
कीण = खरीदना	**उड्ढे** = उड़ना	**तर** = तैरना
कलह = झगड़ना	**गज्ज** = गर्जना	**धर** = पकड़ना
मुंच = छोड़ना	**चल** = चलना	**नम** = नमन करना

(ख) क्रियारूपों की पूर्ति कीजिए (अकारान्त) :

सर्वनाम	वर्तमानकाल	मूलक्रिया	भूतकाल	भविष्यकाल	आज्ञा
सो	पढ+इ	(पढ)	पढीअ	पढिहिइ	पढउ
अहं	....	(चल)	....	....	....
तुमं	....	(गच्छ)	....	....	....
अम्हे	....	(खेल)	....	....	....
ते	....	(लिह)	....	....	....
तुम्हे	....	(नम)	....	....	....

(ग) अकारान्त आदि क्रियारूपों से पूर्ति करें :

सो	पाइ	(पा)	पाही	पहिइ	पाउ
अहं	....	(ठा)	....	....	....
तुमं	....	(गा)	....	....	....
ते	....	(णे)	....	....	....
तत्थ किं	....	(हो)	....	....	....

(घ) प्राकृत में अनुवाद करो :

तुम वहाँ कहते हो। मैं वहाँ भेजूँगा। वह क्यों रोती है ? तुम सब यहाँ बैठो। वे सब यहाँ कब आये? उन्होंने क्या सीखा ? हमने झगड़ा नहीं किया। क्या मैं बोलूँ ? तुम न रोओ। वह न तैरे। तुम कब सीखोगे? हम नहीं तैरेंगे। वे वहाँ उड़ेंगे ? वे नमन करेंगे। हम नहीं चलेंगे। बालक पढ़ेगा। बालिका गायेगी।

पाठ ४ : कृदन्त

सम्बन्ध कृदन्त

अहं पढिऊण खेलामि	=	मैं पढकर खेलता हूँ।
तुमं खेलिऊण पढसि	=	तुम पढकर खेलते हो।
सो हसिंऊण पुच्छइ	=	वह हंसकर पूछता है।
सा सयिऊण जग्गइ	=	वह सोकर जागती है।
मित्तं जग्गिऊण पढइ	=	मित्र जागकर पढ़ता है।
बालो पुच्छिऊण जाणइ	=	बालक पूछकर जानता है।
बाला बोल्लिऊण हसइ	=	बालिका बोलकर हंसती है।
अम्हे पढिऊण खेलिहामो	=	हम सब पढ़कर खेलेंगे।

शास्त्र–ज्ञान

सूई जहा ससुत्ता, न नस्सई कयवरम्मि पडिआ वि।
जीवो वि तह ससुत्तो, न नस्सइ गओ वि संसारे।।

जैसे धागा पिरोई हुई सुई गिर जाने पर भी गुम नहीं होती, वैसे ही शास्त्र–ज्ञान से युक्त व्यक्ति संसार में रहने पर भी नष्ट नहीं होता।

हेत्वर्थ कृदन्त

अहं पढिउं लग्गामि	=	मैं पढ़ने के लिए जागता हूँ।
तुमं खेलिउं पुच्छासि	=	तुम खेलने के लिए पूछते हो।
सो हसिउं पढसि	=	वह हंसने के लिए पढ़ता है।
सा सयिउं पुच्छइ	=	वह सोने के लिए पूछती है।
मित्तं जग्गिउं पढइ	=	मित्र जगने के लिए पढ़ता है।
बालो नमिउं पुंच्छइ	=	बालक नमन करने के लिए जाता है।
बाला बोल्लिउं पुच्छइ	=	बालिका बोलने के लिए पूछती है।
अम्हे पढिउं जग्गिहामो	=	हम सब पढने के लिए जागेंगे।

वर्तमान कृदन्त

पढन्तो बालओ गच्छइ	=	पढ़ता हुआ बालक जाता है।
पढन्तो जुवई नमइ	=	पढ़ती हुई युवति नमन करती है।
पढन्तं मित्तं हसइ	=	पढ़ता हुआ मित्र हँसता है।
हसमाणो छत्तो खेलइ	=	हँसता हुआ छात्र खेलता है।
हसमाणी बाला गच्छइ	=	हँसती हुई बालिका जाती है।
हसमाणं मित्तं पढइ	=	हँसता हुआ मित्र पढ़ता है।

भूतकालिक कृदन्त

(क)

संतुट्ठो णिवो धणं देइ	=	संतुष्ट राजा धन देता है।
संतुट्ठा नारी लज्जइ	=	संतुष्ट नारी लज्जा करती है।
संतुट्ठं मित्तं कज्जं करइ	=	संतुष्ट मित्र कार्य करता है।

(ख)

सो गओ	=	वह गया।
सा गआ	=	वह गयी।
मित्तं गअं	=	मित्र गया।
सो दिट्ठो	=	वह देखा गया।
सा दिट्ठा	=	वह देखी गयी।
तं दिट्ठं	=	वह देखा गया।

भविष्यकालिक कृदन्त

पढिस्संतो गंथो	=	पढ़ा जाने वाला ग्रंथ।
पढिस्संता गाहा	=	पढी जाने वाली गाथा।
पढिस्संतं पत्तं	=	पढ़ा जाने वाला पत्र।

योग्यतासूचक कृदन्त

(क)

हणीओ वित्तान्तो अत्थि	=	कहने योग्य वृतान्त है।
कहणीआ कहा अत्थि	=	कहने योग्य कथा है।
कहणीअं चरित्तं अत्थि	=	कहने योग्य चरित्र है।

(ख)

मुणेअव्वो धम्मो अत्थि	=	जानने योग्य धर्म है।
मुणेअव्वा आणा अत्थि	=	जानने योग्य आज्ञा है।
मुणेअव्वं जीवणं अत्थि	=	जानने योग्य जीवन है।

(ग)

गंथो पढिअव्वो	=	ग्रंथ पढ़ा जाना चाहिए।
गाहा पढिअव्वा	=	गाथा पढ़ी जानी चाहिए।
पत्तं पढिअव्वं	=	पत्र पढ़ा जाना चाहिए।

नियम कृदन्त

नियम 17 क्रिया के **सम्बन्ध कृदन्त** रूप बनाने के लिए क्रिया में तुं, तूण, य आदि आठ प्रत्यय लगते हैं। यहाँ केवल तूण (ऊण) प्रत्यय लगाकर प्रयोग दिखाया गया है। ऊण प्रत्यय लगाने के पूर्व अकारान्त क्रिया के **अ** को **इ** हो जाता है। जैसे–

पढ+इ+ऊण=पढिऊण, दा+ऊण=दाऊण, हो+ऊण=होऊण

नियम 18 **हेत्वर्य कृदन्त** बनाने के लिए क्रिया में तुं (उं) प्रत्यय जुड़ जाता है एवं अकारान्त क्रियाओं के अ को इ हो जाता है। जैसे–

पढ+इ+उं=पढिउं, दाउं, होउं

नियम 19 **वर्तमानकालिक कृदन्त** मूल क्रिया में न्त, माण प्रत्यय जुड़ने पर बनते हैं। उसके बाद लिंग के प्रत्यय जुड़ते हैं। जैसे–

(क) पढ+न्त=पढन्त+ओ=पढन्तो, ई=पढन्ती, ँ =पढन्तँ।

(ख) पढ+माण=पढमाण+ओ=पढमाणो, पढमाणी, पढमाणं।

नियम 20 **भूतकालिक कृदन्त** के रूप मूल क्रिया में इ प्रत्यय जुड़ने पर तथा क्रिया के अ को विकल्प से इ होने पर बनते हैं। जैसे–

(क) पढ+इ+अ=पढिअ = पढ़ा हुआ।

(ख) संतुट्ट+अ=संतुट्ट = संतुष्ट हुआ (इ न होने पर)

नियम 21 **भविष्यकालिक कृदन्त** के रूप मूल क्रिया अ को इ हाने पर स्संत प्रत्यय लगने पर बनते हैं। जैसे–

पढ+इ+स्संत=पढिस्संत

नियम 22 **योग्यता–सूचक कृदन्त** (विधि) मूल क्रिया में अणीअ एवं अव्य प्रत्यय लगने पर बनते हैं। जैसे–

(क) कह+अणीअ=कहणीअ।

(ख) अव्व प्रत्यय लगाने पर तथा क्रिया के अ को एक होने पर। जैसे–
मुण+ए+अव्व=मुणेअव्व।

(ग) इनका प्रयोग चाहिए अर्थ में भी होता है।

नियम 23 वर्तमान, भूत, भविष्य एवं योग्यता सूचक कृदन्तों का प्रयोग विशेषण के रूप में भी होता है, तब विशेष्य के अनुसार उनके रूप बनते हैं।

अभ्यास

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करो :

	मूल क्रिया	कृदन्त	प्रत्यय	कृदन्तरूप	लिंग / निर्देश
(क)	पढ	सम्बन्ध	इ+उण	पढिऊण	पढ़कर
	हस	सम्बन्ध	....	....	....
(ख)	पढ	हेत्वर्थ	इ+उं	पढिउं	पढ़ने के लिए
	जाण	हेत्वर्थ	....	....	....
	नम	हेत्वर्थ	....	....	....
(ग)	पढ	वर्तमान	न्त	पढन्त	पढन्तो (पु.)
	जाण	वर्तमान	....	....	...............(स्त्री.)
	नम	वर्तमान	....	....	...............(नपु.)
	पुच्छ	वर्तमान	माण	....	...............(पु.)
	भण	वर्तमान	....	....	...............(स्त्री.)
(घ)	पढ	भूतकाल	इ+अ	पढिअ	पढिओ (पु.)
	नम	भूतकाल	....	....	...............(नपु.)
	दिट्ठ	भूतकाल	अ	दिट्ठ	दिट्ठो (पु.)
	कअ	भूतकाल	अ	कअ	कअं (नपु.)
(ङ.)	पढ	भविष्य	इ+स्संत	पढिस्संत	पढिस्संतो (पु.)
	लिह	भविष्य	....	....	...............(नपु.)
(च)	पढ	योग्यता	अणीअ	पढणीअ	पढणीओ (पु.)
	रक्ख	योग्यता	....	....	...............(स्त्री.)
	भण	योग्यता	ए+अव्व	....	...............(नपुं.)

2. प्राकृत में अनुवाद करो :

मैं हँसकर नमन करता हूँ। तुम लिखकर पढ़ो। उसने वहाँ जाकर पत्र लिखा। वह खेलने के लिए वहाँ जाय। तुम पढ़ने के लिए आते हो। हम सब नमन करने के लिए वहाँ गये। पढ़ता हुआ छात्र आता है। नमन करती हुई बालिका जाती है। हँसता हुआ मनुष्य है। वह पढ़ा हुआ ग्रंथ है। वह वहाँ गया। पढ़ने योग्य पुस्तक है। कार्य किया जाना चाहिए।

चरित्रहीन व्यक्ति

सुबुहं पि सुयमहीयं किं काहिइ चरणविप्पहीणस्स।
अंधस्स जह पलित्ता, दीवसयसहस्सकोडी वि।।

शास्त्रों का अत्याधिक अध्ययन भी चरित्रहीन व्यक्ति के लिए किस काम का ? क्या करोड़ों दीपक जला देने पर अंधे को कोई प्रकाश मिल सकता है ?

1. गिह–उववनं (षष्ठी विभक्ति)

तं मज्ज गिहं अत्थि। इमं तुज्झ गिहं अत्थि। तस्स गिहं तत्थ अत्थि। ताअ गिहं अतथ ण अत्थि। इमस्स गिहं कत्थ अत्थि ? कस्स गिहं दूरं अत्थि ? गिहस्स सामी मज्झ जणओ अत्थि। मज्झ जणणी तत्थ वसइ। मज्झ बहिणी तत्थ पढइ। मज्झ भायरो तुज्झ मित्तं अत्थि। अहं तस्स पोत्थअं णेमि।

इमं अम्हाण उववनं अत्थि। तुम्हाण मित्ताणि अत्थ खेलन्ति। ताण पुत्ता तत्थ ध ावन्ति। इमाण भायरा तत्थ ण गच्छन्ति। काण मित्ताणि तत्थ जीमन्ति ? उववनस्स इमे रुक्खा सन्ति। इमाणि ताण पुप्फाणि सन्ति। इमं णयरस्स सुंदेरं उववनं अत्थि। अत्थ कमलस्स पुप्फं अत्थि। पुप्फस्स लआ अत्थि। कमलाण पुप्फाण माला सोहइ। अत्थ वारिणो णई ण अत्थि। अम्हाण गिहस्स अणुअरो वत्थुणो मुल्लं पुच्छइ। तस्स वत्थूण आवणो अत्थि।

अभ्यास

(क) हिन्दी में अर्थ लिखो : **(ख) षष्ठी के रूप लिखो :**

शब्द	अर्थ	पहिचान	शब्द	ए.व.	ब.व.
मज्झ	मेरा	(सर्व. ए.व.)	बालअ	बालस्स	बालआण
तुज्झ	....	....	कवि	....	....
तस्स	....	....	साहु	....	....
ताअ	....	....	बाला	....	....
करस	....	....	नई	....	....
गिहस्स	....	....	धेणु	....	....
अम्हाण	....	....	बहू	....	....
ताण	....	....	फल	....	....
णयरस्स	....	....	वारि	....	....

२. विज्जालयं (षष्ठी विभक्ति)

इमं सोहणस्स विज्जालयं अत्थि। अत्थ तस्स भायरा मित्ताणि य पढन्ति। विज्जालयस्स तं भवणं अत्थि। इमं तस्स दारं अत्थि। तत्थ तस्स खेत्तं अत्थि। चन्दणाअ बहिणी अत्थ पढइ। ताअ अभिहाणो कमला अत्थि। कमलाअ गुरू विउसो अत्थि। विउसाण गुरुणो सीसा विणीआ होन्ति। विणीअस्स सीसस्स णाणं वरं होइ। सोहणस्स इमं पोत्थअं अत्थि। ताणि पोत्थआणि तस्स मित्ताण सन्ति। तस्स भायराण पोत्थआणि काणि सन्ति ?

इमा कमलाअ लेहणी अत्थि। ताअ सहीए इमा माला अत्थि। मालाअ रंगं पीअ अत्थि। कमलाअ सहीण मालाण मुल्लं अप्पं अत्थि। इमं विज्जालयं बालआण अत्थि। तं विज्जालयं बालाण अत्थि। तत्थ विउसाण सम्माणं हवइ। अत्थ गुरूण पूआ हवइ। अत्थ बालआ पढन्ति। तत्थ बालाओ पढन्ति।

अभ्यास

(क) नये शब्द छांटकर लिखो :

शब्दरूप	मूलशब्द	विभक्ति	वचन
सोहणस्स	सोहण	षष्ठी	ए.व.
....	....	....	....
....	....	....	....
....	....	....	....
....	....	....	....

(ख) प्राकृत में अनुवाद करो :

वह मेरी पुस्तक है। यह तेरा घर है। वह किसका पुत्र है ? ये पुस्तकें तुम्हारी हैं। वहाँ कुलपति का शासन है। यह बच्चों का उपवन है। माला की दुकान कहाँ है ? यह युवति का भाई है। गाय का दूध मीठा होता है। यह फल का वृक्ष है। वह पानी की नदी है। वह फलों का रस है।

3. कुडुम्बं (द्वितीया विभक्ति)

इमं मम कुडुम्बं अत्थि। जणओ कुडुम्बं पालइ। सो ममं णेहं करइ। मज्झ भायरो तुमं जाणइ। मज्झ जणओ पोत्थअं पढइ। जणणी तं दुद्धं देइ। तुज्झ बहिणी कमला अत्थि। माआ तं पासइ। इमो अम्हाण पिआमहो अत्थि। अम्हे इमं नमामो। तुम्हे किं नमित्था ? माउलो अम्हे वत्थं देइ। सो तुम्हे धणं देइ। भाउजाया ते नमइ। ते ताओ बहूओ पासन्ति। बहिणी इमे भायरा पत्ताणि लिहइ। भायरा इमाओ बहिणीओ धणं पेसन्ति। माआ के पुत्ता इच्छइ ? ताओ काओ कन्नाओ साडीओ देन्ति ?

अभ्यास

(क) पाठ में से द्वितीया विभक्ति के सर्वनामरूप छांटकर उनके अर्थ लिखो।

(ख) द्वितीया विभक्ति के शब्दरूप छांटकर उनके अर्थ लिखो।

(ग) कुटुम्ब के सदस्यों के प्राकृत शब्द लिखो :

पिता, भाई, छोटा भाई, माता, बहिन, पितामह, मामा, भौसी (भाभी), बहू, पुत्र, कन्या।

(घ) प्राकृत में अनुवाद करो :

मित्र मुझको जानता है। वह तुमको पूछता है। माता उसको पालती है। कन्या उस स्त्री को नमन करती है। मैं इसको नहीं जानता हूँ। तुम किसको पत्र लिखते हो? गुरु उन सबको जानते हैं। वे तुम सबको पूछेंगे। तुम इन सबको नमन करो।

(ङ.) क्रियाएँ याद करो :

वस = रहना	**सोह** = अच्छा लगना	**धाव** = दौड़ना
परिवट्ट= बदलना	**उत्पन्न**= उत्पन्न होना	**आव** = आना
जाय = पैदा होना	**बीह** = डरना	**गिण्ह** = ग्रहण करना
मग्ग = मांगना	**अच्च** = पूजा करना	**धोव** = धोंना

४. पभायवेला (द्वितीया विभक्ति)

इमं पभायं अत्थि। बालआ जग्गन्ति। ते जणअं नमन्ति। बालाओ जणणिं नमन्ति। सोहणो णियं करं पायं य धोवइ। सो णहाणं करइ। तया ईसरं नमइ। कमला उववनं पासइ। तत्थ पक्खिणो गीयं गान्ति। पुप्फाणि वियसन्ति। भमरा गुंजन्ति। बालआ कंदुअं खेलन्ति। छत्ता पोत्थआणि पढन्ति। कवी कव्वं लिहइ। गुरू सत्थं पढइ। किसाणो खेत्तं गच्छइ। सेवओ कज्जं करइ। बालआ विज्जालयं बच्छन्ति।

गुरू विज्जालयं गच्छइ। तत्थ सो बालआ पुच्छइ। विणीआ छत्ता तत्थ पाइअं पढन्ति। ते गाहाओ सुणन्ति। कलाओ सिक्खन्ति। आयरियं नमन्ति।

पभायं सुंदेरं हवइ। माआ बालं दुद्धं देइ। धूआ माअं नमइ। इत्थी मालं धारइ। सा जुवइं पासइ। जुवई नइं गच्छइ। तत्थ सा बहुं पुच्छइ। बहू धेणुं दुहइ। सा सासुं दुद्धं देइ। पुरिसो णयरं गच्छइ। तत्थ दुद्धं विक्कीणइ, फलाणि कीणइ तया घरं आगच्छइ।

अभ्यास

(क) द्वितीया विभक्ति के शब्द छांटकर उनका अर्थ लिखो :

पुल्लिंग.................. ....

नपुं.लिंग................. ....

स्त्रीलिंग................. ....

(ख) प्राकृत में अनुवाद करो :

पिता बालक को पालता है। राजा कवि को जानता है। हम साधु को नमन करते हैं। विद्वानों को कौन नहीं जानता है ? तुम जीव को न मारो। स्त्री माला को धारण करती है। बहू साड़ी को चाहती है। आदमी गायों को देखता है। बालक फलों को चाहते हैं। छात्र शास्त्रों को पढ़ते हैं। वे वस्तुओं को नहीं चाहते हैं।

५. गुण-गरिमा (सप्तमी विभक्ति)

सव्वे पाणा चेअणगुणा हवन्ति। तेसु णाणं होइ। जहा अम्हम्मि जीवणं अत्थि तहा तुम्हम्मि वि। अचेअणदव्वेसु पाणा ण सन्ति। किन्तु तेसु गुणा हवन्ति। जहा–फले रसं अत्थि, पुप्फे सुयंधो अत्थि, दहिम्मि घअं अत्थि, जले सीयलआ अत्थि, अग्गिम्मि उण्हआ अत्थि। सरोवरे कमलाणि सन्ति। कमलेसु भमरा सन्ति। रुक्खेसु फलाणि सन्ति। नीडे पक्खिणो सन्ति। नईए नावा तरन्ति।

घरे जणा निवसन्ति। पुरिसेसु खमा वसइ। जुवाणेसु सत्ति होइ। जुवईसु लज्जा अत्थि। तासु सद्धा अत्थि। बालए सच्चं अत्थि। छत्ते विनयं अत्थि। विउसम्मि बुद्धी अत्थि। सिसुम्मि अण्णाणं अत्थि। किन्तु साहुम्मि तेओ अत्थि। माआए समप्पणं अत्थि। धेणूए दुद्धं अत्थि। बहूए गुणा सन्ति। मालाए पुप्फाणि सन्ति। गअणे तारआ सन्ति। गुणेण बिणा किं वि वत्थू ण अत्थि।

अभ्यास

(क) हिन्दी में अर्थ लिखो : **(ख) सप्तमी के रूप लिखो :**

शब्दरूप	अर्थ	पहिचान	शब्द	ए.व.	ब.व.
तेसु	उनमें	सर्व. ब.व.	अम्ह	अम्हम्मि	अम्हेसु
अम्हिम्मि	....	....	तुम्ह	....	....
दव्वेसु	....	....	त	....	....
फले	....	....	णर	....	....
दहिम्मि	....	....	बहू	....	....
नईए	....	....	कवि	....	....
मालाए	....	....	बाला	....	....

(ग) प्राकृत में अनुवाद करो :

मुझ में शक्ति है। उसमें जीवन है। उस (स्त्री) में लज्जा है। हम सब में क्षमा है। बालकों में विनय है। साड़ी में फूल है। वृक्षों पर पक्षी हैं। घरों में बालक हैं।

६. दिणचरिया (तृतीया विभक्ति)

सुज्जस्स किरणेण सह जणा जग्गन्ति। बालआ जअण सह उट्ठन्ति, जलेण मुहं पक्खालन्ति। जणा मन्दिरं गच्छन्ति। तत्थ ते देवं णयणेहिं पासन्ति। ते सिरेण हत्थेहि देवं नमन्ति। मुहेण देवस्स थुइं पढन्ति। ते पुप्फेहि फलेहि य देव अच्चन्ति। जणा आयरियेण सत्थं सुणन्ति। सत्थेण बिणा मन्दिरस्स सोहा णत्थि। जहा धणेण अहवा गुणेण बिणा नरस्स सोहा णत्थि।

देवं अच्छिऊण जणा भुंजन्ति। ते भिच्चेण सह आवणं गच्छन्ति। बालओ मित्तेण सह विज्जालयं गच्छइ। जुवई हत्थेहिं वत्थं धोवइ। सा साडीए सोहइ। माआ सिसुणो सह खेलइ। सिसू तत्थ पएण चलइ। सो मित्तेण सह खेलइ, कुंदुएण रमइ। तेण तं सुक्खं होइ। सो माआए बिणा ण भुंजइ।

माआ जरेण पीडइ। ताए गिहस्स कज्जं ण होइ। तुमए ताअ सेवा होइ। सा दहिणा सह पथ्थं गेण्हइ। घरेण बिणा सुहं णत्थि। जणा गेहे वसन्ति। ताण णेहेण गिहस्स सोहा होइ।

अभ्यास

(क) पाठ में से तृतीया विभक्ति के शब्दरूप छांटकर उनके अर्थ लिखो।

(ख) प्राकृत में अनुवाद करो :

यह कार्य मेरे द्वारा होता है। वह कार्य उसके द्वारा होता है। वह बालक के साथ जायेगा। हम शिष्य के साथ भोजन करते हैं। गुरु छात्रों के साथ रहता है। कवि के द्वारा कार्य होता है। वह साधु के साथ पढ़ता है। माता बच्चों के साथ रहती है। बालिका के साथ उसका भाई जाता है। बच्चे मालाओं से खेलते हैं। फलों के बिना वह भोजन नहीं करता है। मैं दही के साथ भोजन करता हूँ। वस्तुओं के साथ क्या है ?

चार पशुकर्म

चउहिं ठाणेहिं जीवा तिरिक्खजोणियत्ताए कम्मं पगरेंति माइल्लयाए नियडिल्लयाए। अलियवयणेणं, कूडतुला कूडमाणेणं।।

कपट, धूर्तता, असत्य वचन और खोटे–माप, ये चार प्रकार के व्यवहार पशु–कर्म हैं। इनसे जीव पशु–योनि में जन्म लेता है।

७. सरोवरं (चतुर्थी विभक्ति)

इमं गामस्स सरोवरं अत्थि। तत्थ जणा ण्हाणं करिउएं गच्छन्ति। तस्स जलं जणस्स अत्थि। सरोवरे कमलाणि सन्ति। ताणि कमलाणि मज्झ सन्ति, सरोवरस्स तडे रुक्खा सन्ति। ताण पुप्फाणि सन्ति। ताण फलाणि तस्स सन्ति। ताइ बालाअ सरोवरे किं अत्थि ? तत्थ अम्हाण देव–मन्दिरं अत्थि। अत्थ तुम्हाण सज्झायसाला अत्थि। ताण बालआण तत्थ रम्मं उववनं अत्थि। तत्थ ते खेलन्ति।

सरोवरं हंसा चलन्ति। जलस्स जंतुणा तत्थ निवसन्ति। तत्थ कविणो सुहं हवइ। सो तत्थ कव्वं लिहइ। सरोवरस्स पडे साहुणा वसन्ति। णिवो साहुणो भोअणं देई। तत्थ णरा कवीण वत्थूणि देन्ति। कवी बालाअ फलं देइ। तत्थ सिसू फलस्स कंदइ। सरोवरस्स जलं कमलस्स अत्थि। तस्स वारिं खेत्तस्स अत्थि। खेत्तस्स धन्न घरस्स अत्थि। सरोवरं णरस्स जीवणस्स बहुमुल्लं अत्थि। तं गामस्स सोहं अत्थि।

अभ्यास

(क) पाठ में चतुर्थी विभक्ति के शब्द छांटकर उनके अर्थ लिखो :

जणस्स = लोगों के लिए **मज्झ** = मेरे लिए

.... = ... = ...

.... = ... = ...

.... = ... = ...

(ख) प्राकृत में अनुवाद करो :

यह कमल मेरे लिए है। वह कमल उसके लिए है। ये वस्तुएँ उन स्त्रियों के लिए हैं। यह दूध बालक के लिए है। वे कुलपति के लिए नमन करते हैं। हम साधुओं के लिए भोजन देते हैं। वह बालिका के लिए माला देगा। माता युवति के लिए साड़ी देती है। सास बहुओं के लिए उपदेश देती है। यह वस्तु घर के लिए है। वह घर शास्त्रों के लिए है।

८. लोअ-सरूवं (पंचमी विभक्ति)

इअं लोअं विचित्तं अत्थि। अत्थ अचेअणाणि चेइणाणि य दव्वाणि सन्ति। ताणं सरूवं सया परिवट्टइ। बालओ बालअत्तो जुवाणो हवइ। जुवाणो जुवाणत्तो बुड्ढो हवइ। णरा णरत्तो पसुजोणीए गच्छन्ति। पसुणो पसुत्तो णरजम्मे उप्पन्नन्ति। रुक्खो बीजत्तो उप्पन्नइ। बीजो रुक्खत्तो उप्पन्नइ। फलत्तो रसं उप्पन्नइ। पुप्फत्तो सुयंधो आवइ। वारित्तो कमलं णिस्सरइ। रुक्खत्तो जुण्णाणि पत्ताणि पडन्ति। दहित्तो घयं जाअइ। दुद्धत्तो दहिं हवइ।

एगसमये मुक्खो विउसत्तो बीहइ। छत्तो गुरुत्तो पढइ। कवी णिवत्तो आयरं गेण्हइ। बहू सासुत्तो धणं मग्गइ। बाला माअत्तो दुद्धं मग्गइ। किन्तु अण्णसमये परिवट्टणं जाअइ। विउसा मुक्खाहिंतो बीहन्ति। गुरुणा छत्ताहिंतो सिक्खन्ति। णिवा कवीहिन्तों पसंसं गेण्हन्ति। सासूओ बहूहिन्तो वत्थाणि मग्गन्ति। माआओ बालाहिन्तो भोअणं गेण्हन्ति। साहुणा असाहूहिन्तो भयं करन्ति। कुसला जणा सेवन्ति। सढा सासनं करन्ति। इमं अस्स लोअस्स विचित्तं सरूवं। जओ णाणीजणा विवेएण संसारस्स कज्जाणि करन्ति।

अभ्यास

(क) पाठ में से पंचमी विभक्ति के शब्दरूप छांटकर उनके अर्थ लिखिए।

(ख) प्राकृत में अनुवाद करिए :

वह मुझ से धन लेता है। बालक तुमसे कमल लेता है। तुम उससे डरते हो। साधु राजा से पुस्तक मांगता है। कवि से काव्य उत्पन्न होता है। शिष्य गुरु से पढ़ता है। माला से सुगन्ध आती है। मैं नदी से पानी लाता हूँ। कमल से पानी गिरता है। वह घर से निकलता है। हम नगर से दूर जाते हैं। सास बहू से धन मांगती है।

जहा कुम्मे सअंगाई, सए देहे समाहरे।
एवं पावाइं मेहावी, अज्झप्पेण समाहरे।।

जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को अपने शरीर में समेट लेता है, इसी प्रकार मेधावी अध्यात्म के द्वारा पापों को समेट लेता है (नष्ट कर देता है)।

षष्ठी विभक्ति

नियम : 23 षष्ठी विभक्ति के एकवचन में सर्वनाम **अम्ह** का **मज्झ** और **तुम्ह** का तुज्झ रूप बनता है।

नियम : 26 पुल्लिंग तथा नपुंसकलिंग सर्वनाम एवं अकारान्त संज्ञा शब्दों के षष्ठी विभक्ति एकवचन में **स्स** प्रत्यय जड़ता है। जैसे–

सर्वनाम त = **तस्स** इम = **इमस्स** क = **कस्स**
पु.सं. पुरिस = **पुरिसस्स** णर = **णरस्स** छत्त = **छत्तस्स**
नपुंसं. जल = **जलस्स** फल = **फलस्स** घर = **घरस्स**

नियम 27 : पुल्लिंग तथा नपुं. इकारान्त एवं उकारान्त शब्दों के आगे **णो** प्रत्यय जुड़ता है। जैसे–

सिसु = **सिसुणो** कवि = **कविणो** दहि = **दहिणो**
सुधि = **सुधिणो** हत्थि = **हत्थिणो** वत्थु = **वत्थुणो**

नियम 28 : (क) स्त्रीलिंग आकारान्त सर्वनाम तथा संज्ञा शब्दों के आगे षष्ठी एक वचन में अ प्रत्यय जुड़ता है। जैसे–

ता + अ = **ताअ** माला + अ = **मालाअ, इमाअ, बालाअ** आदि।

(ख) स्त्री. इ, ईकारान्त शब्दों के आगे **आ** प्रत्यय एवं **उ**, ऊकारान्त शब्दों के आगे **ए** प्रत्यय जुड़ता है। जैसे–

आ = **जुवईआ, नईआ, साड़ीआ**
ए = **धेणूए, बहूए, सासूए** आदि।

नियम 29 : पु. नपुं. तथा स्त्री. सर्वनाम एवं संज्ञा शब्दों के षष्ठी बहुवचन में ण प्रत्यय जुड़ता है तथा शब्द का ह्स्व स्वर दीर्घ हो जाता है। जैसे–

सर्वनाम – तुम्ह = **तुम्हाण,** अम्ह = **अम्हाण**, त = **ताण,** इमा = **इमाण**।

पु. नपुं. – **पुरिसाण, सुधीण, सिसूण, दहीण, वत्थूण।**
स्त्री. – **मालाण, बालाण, जुवईण, साडीण, बहूण।**

चतुर्थी विभक्ति :

नियम 30 : प्राकृत में चतुर्थी विभक्ति में सभी सर्वनाम एवं संज्ञा शब्द षष्ठी विभक्ति के समान ही प्रयुक्त होते हैं।

द्वितीया विभक्ति :

नियम 31 : द्वितीया विभक्ति के एकवचन में अम्ह का ममं एवं तुम्ह का तुमं रूप बनता है।

नियम 32 : सभी सर्वनामों एवं संज्ञा शब्दों में द्वितीया विभक्ति के एकवचन में (ं) लगता है तथा दीर्घ स्वर ह्स्व हो जाते हैं। जैसे–

सर्व.– तं, कं, इमं, ता = तं, का = कं, इमा = इमं
पु. **बालं, पुरिसं, सुधिं, सिसुं।**
नपुं. ***जलं, णयरं, वारिं, वत्थुं।***
स्त्री. **मालं, जुवइं, वहुं, सासुं।**

नियम 33 : सभी सर्वनाम एवं संज्ञा शब्दों के प्रथमा विभक्ति बहुवचन के रूप ही द्वितीया विभक्ति बहुवचन में प्रयुक्त होते हैं। जैसे–

सर्व.– ते, के, अम्हे, तुम्हे, काओ, इमाओ, ताणि, इमाणि।

पु. **पुरिसो, कविणो, सिसुणो।**

नपुं. **जलाणि, णयराणि, वारीणि, वत्थूणि।**

स्त्री. **मालाओ, नईओ, बहूणो, सासूओ।**

सप्तमी विभक्ति :

नियम 34 : सभी पु. सर्वनामों तथा पु. नपुं. के इ एवं उकारान्त शब्दों में सप्तमी एकवचन में म्मि प्रत्यय लगता है। जैसे–

सर्व. – **अम्हम्मि, तुम्हम्मि, तम्मि, इमम्मि, कम्मि।**

संज्ञा – **सुधिम्मि, सिसुम्मि, वारिम्मि, वत्थुम्मि।**

नियम 35 : स्त्री. सर्वनामों अकारान्त पु. नपुं. शब्दों एवं स्त्री. शब्दों में सप्तमी एकवचन में ए प्रत्यय लगता है। इ एवं उ दीर्घ हो जाते हैं। जैसे–

सर्व. – **ताए, इमाए, काए** पु. **पुरसे, छत्ते, सीसे, जले, फले।**

स्त्री. – **बालाए, साडीए बहूए जुवईए, धेणूए।**

नियम 37 : सभी सर्वनामों एवं संज्ञा शब्दों में सप्तमी बहुवचन में **सु** प्रत्यय लगता है। अकारान्त शब्दों में एकार हो जाता है तथा ह्रस्व स्वर दीर्घ हो जाते हैं। जैसे–

सर्व. – **अम्हेसु, तेसु, तासु। पु. पुरसेसु, जलेसु, सुधीसु, सिसूसु।**

स्त्री. – **बालासु, जुवईसु, धेणूसु, सासूसु।**

तृतीया विभक्ति :

नियम 37 : तृतीया विभक्ति के एकवचन में **अम्ह** का **मए** एवं **तुम्ह** का **तुमए** रूप बनता है।

नियम 38 : पु. ए.व नपुं. सर्वनाम तथा अकारान्त शब्द रूपों में तृतीया विभक्ति के एकवचन में शब्द के अ को ए होता है तथा ण प्रत्यय जुड़ता है।

सर्व– तेण, इमेण, केण। संज्ञा – पुरिसेण छत्तेण, जेण

नियम 39 : पु. तथा नपुं. इ एवं उकारान्त शब्दों के आगे **णा** प्रत्यय जुड़ता है। जैसे– **कविणा, साहुणा, वारिणा, वत्थुणा।**

नियम 40 : स्त्री. सर्वनाम एवं संज्ञा शब्दों में तृतीया विभक्ति के एकवचन में **ए** प्रत्यय जुड़ता है। ह्रस्व दीर्घ हो जाते हैं। जैसे–

सर्व. – ताए, इमाए, काए। संज्ञा – बालाए, नईए, बहूए।

नियम 41 : सभी सर्वनामों एवं सभी संज्ञा शब्दों में तृतीया विभक्ति के बहुवचन में **हि** प्रत्यय लगता है। शब्द के अ को **ए** तथा ह्रस्व स्वर दीर्घ हो जाते हैं। जैसे–

संज्ञा (पु.)– **पुरिसेहि, छत्तेहि, कवीहि, सिसूहि (नपुं.) वारीहि, वत्थुहि**

स्त्री. – **बालाहि, नईहि, अहूहि। सर्व. अम्हेहि, तेहि, ताहि।**

पंचमी विभक्ति :

नियम 42 : पंचमी विभक्ति एउकवचन में **अम्ह** का ममाओ एवं **तुम्ह** का **तुमाओ** रूप बनता है।

नियम 43 : पु. एवं नपुं. सर्वनामों के दीर्घ होने के बाद उनमें **ओ** प्रत्यय जुड़ता है। जैसे–

ताओ, इमाओ, काओ।

नियम 44 : स्त्री. सर्वनाम एवं संज्ञा शब्दों में ह्रस्व होकर तथा नपुं. एवं पु. शब्दों में पंचमी विभक्ति के एकवचन में **त्तो** प्रत्यय जुड़ता है। जैसे–

स्त्री. – **ता = तत्तो, इमा = इमत्तो, बाला = बालात्तो, बहुत्तो**

पु. – **पुरिसत्तो, कवित्तो, सिसुत्तो, जलत्तो, परित्तो आदि।**

नियम 45 : सभी सर्वनामों एवं संज्ञा शब्दों में दीर्घ स्वर होने के बाद पंचमी विभक्ति के बहुवचन में **हिंतो** प्रत्यय जुड़ता है। जैसे–

अम्हाहिंतो, ताहिंतो, पुरिसाहिंतो, बालाहिंतो, बहूहिंतो आदि।

पाठ ६ : वत्तालावं

सोहणो – मोहण, तुमं कआ जग्गसि ?

मोहणो – अहं पभाये जग्गामि।

सोहणा – तआ तुमं किं करसि ?

मोहणो – अहं जणएण सह भमिउं गच्छामि।

सोहणो – तअणन्तरं तुमं किं करसि ?

मोहणो – अहं पइदिणं पढामि।

सोहणो – तुमं संझावेलं वि पढसि ?

मोहणो – ण, अहं तआ खेलामि।

सोहणो – तुमं कत्थ खेलसि ?

मोहणो – अहं गिहस्स समीवं खेलामि।

सोहणो – तुमं विज्जालयं कआ गच्छसि ?

मोहणो – पायं दसवअणकाले।

सोहणो – तुज्झ विज्जालए रामो वि पढइ ?

मोहणो – आं, सो तत्थ पढइ।

सोहणो – तुमं अहुणा कत्थ गच्छसि ?

मोहणो	–	अहं अज्ज आवणं गच्छामि।
सोहणो	–	तुमं मम गिहं चलहि।
मोहणो	–	अज्ज अवआसो णत्थि। कल्लं आगच्छिहिमि।
सोहणो	–	तुमं सआ एवं भणसि। किन्तु कयावि ण आगच्छसि।
मोहणो	–	तुमं मा रूसय। कल्लं अवस्सं आगच्छिहिमि।
सोहणो	–	वरं, अहं मग्गं पासिहिमि। दाणिं गच्छामि। तुमं सिग्घं आगच्छहि
मोहणो	–	वरं

अभ्यास

(क) पाठ में से अव्यय छांटकर उनके अर्थ लिखो :

कआ = कब .... = ... = ...

.... = ... = ...

.... = ... = ...

जीववधो अप्पवंधो जीवदया होदि अप्पणो हु दया।
विसंकटओ सव्व हिंसा परिहरिदव्वा जदो होदि।।

जीव वध, अपना ही वध है और जीव दया, अपनी ही आत्मा पर दया है। इसलिए विष के कांटे की तरह सब प्रकार की हिंसाएँ त्याग देने योग्य हैं।

जो देइ अभयदाणं जीवाणं विविह दुक्खतवियाणं।
अज्जिजइ जयसिरिं सो अउव्व निव्वाणमणि नियमा।।

जो अनेक दुःखी जीव को अभय प्रदान करता है, वह नियम से विजयश्री को प्राप्त करता है एवं मोक्षगामी होता है।

पाठ ७ : जीवलोओ

इमे लोए बहु जीवा सन्ति। रुक्खेसु, लआसु, जले, अग्गिए, पवणे थले वि पाणा हवन्ति। इमे एगिन्दिया जीवा सन्ति। मक्कुणे (खटमले) दोण्णि इंदियाणि हवन्ति। पिवीलिआए तिण्ण इंदियाणि हवन्ति मक्खिआए चउरो इंदियाणि हवन्ति। सप्पे पंच इंदियाणि हवन्ति। पक्खी, पसू, मणुस्सो, पंचिन्दियो जीवो अत्थि। तेसु फासो, रसणा, घाणो, चकखू सवणो य इमाणि पंच इंदियाणि सन्ति।

पक्खिणो अम्हाण सहअरा हवन्ति। ते मणुस्साण मित्ताणि हवन्ति। पभाये पक्खिणो कलअलसरेण गीअं गान्ति। ताण सरो महुरो हवइ। पक्खीसु काओ कण्हो हवइ। हंसो धवलो हवइ। कोइला काली हवइ किन्तु सा महुरसरेण गाइ। मोरा अइसुन्दरा हवन्ति। ते वरिसाकाले णच्चन्ति। सुग्गा जणाण अइपिआ हवन्ति। ते माणुसस्स भासाए वि बोल्लन्ति। कुक्कुडा पभाये जणाण पवोहयन्ति। पिवीलिआओ सपरिस्समेण जणाण पेरणा देन्ति।

माणुसस्स जीवणे पसूण वि महत्तं अत्थि। पसुणो जणस्स सहयोगिणो सन्ति। अस्सो भारं वहइ। जणा अस्सेण सह जत्तासु गच्छन्ति। अस्सो णरस्स मित्तं अत्थि। कुक्कुरो माणुसस्स रक्खं करई। सो अम्हाण गिहाणि चोराहिन्तो रक्खइ। बइलो किसाणस्स मित्तं अत्थि। सो हलं सअडं य करिसइ। बइला खेत्तं करिसन्ति। धेणु अम्हाण दुद्ध देइ। सा तणाणि खाइऊण बहुमुल्लं बलजुत्तं आहारं देइ। अजा वि दुद्धं देइ। जणाण गिहेसु मज्जारा मूसआ वि वसन्ति।

मरुथले कमेला (ऊट्टा) संचरन्ति। वणे गआ भमन्ति। तेसु अहिअं बलं हवइ। तत्थ सीहो वि गज्जइ। तस्स गज्जणेण मिआ धावन्ति। सिआलो गच्छन्ति। वाणरा साहाएसु कूदन्ति। सव्वे जीवा जीविउं इच्छन्ति, ण मरिउं। अओ तेसु अभयं भविअव्वं। ते सहावेण हिंसआ ण सन्ति। अअएव के वि जीवा ण पीडिअव्वा।

अभ्यास

(क) पाठ में से दस शब्दों को छांटकर उनकी विभक्ति और वचन लिखिए :

1.	जीवा	प्रथमा	ब.व.
2.	ते	प्रथमा (सर्व.)	ब.व.
3.	....	....	....
4.	....	....	....
5.	....	....	....
6.	....	....	....
7.	....	....	....
8.	....	....	....
9.	....	....	....
10.	....	....	....

(ख) पाठ के संख्यावाची शब्द लिखकर उनके अर्थ लिखो :

एग	=	एक	**दोण्णि**=	दो	
....	=	....	....	=	....
....	=	....	....	=	....
....	=	....	....	=	....
....	=	....	....	=	....
....	=	....			

(ग) पाठ की नई क्रियाएँ छांटकर उनके अर्थ लिखो–

क्रिया	अर्थ	क्रिया	अर्थ	क्रिया	अर्थ
....	....	....	....	....	....
....	....	....	....	....	....

(घ) प्राकृत में अनुवाद करो :

राम गाँव को जाता है। वे फलों को खाते हैं। राजा के द्वारा कार्य होता है। कवि काव्य लिखता है। बालक भाई के साथ विद्यालय जायेगा। यह दूध उस पुत्र के लिए है। वह कमल इस कन्या के लिए है। सोहन की पुस्तक कहाँ है ? मनुष्यों का मित्र कौन है ? हाथी में शक्ति है। फूलों में सुगन्ध है। वृक्षों से पत्ते गिरते हैं। कमल से पानी गिरता है। वह मुझ से धन माँगता है।

(ड.) पाठ में आये विभिन्न जीवों का मानव जीवन में क्या महत्त्व है, इसे अपने शब्दों में लिखिए।

सुवण्णरुपस्स उ पव्वया भवे, सिया हु केलाससमा असंखया।
नरस्स लुद्धस्स न तेहि किंचि, इच्छा हु आगाससमा अणन्तिया।।

लोभी मनुष्य के लिए कदाचित् कैलाश पर्वत के समान सोने–चाँदी के असंख्य पर्वत भी हो जाएँ, किन्तु उनके द्वारा उसकी कुछ भी तृप्ति नहीं होती, क्योंकि इच्छायें आकाश के समान अन्त–रहित होती है।

पाठ ८ : अम्हाण पुज्जणीआ

जणा सगुणेहि पुज्जणीआ हवन्ति। माणवजीवणे गुरुणा, पिअरस्स जणणीए ठाणं महत्तपुण्णं अत्थि। जओ ते अम्हाण पुज्जणीआ सन्ति। सव्वेसु धम्मेसु गुरुण ठाणं उच्चं अत्थि। गुरुणा विणा को णाण लहिहिइ ? गुरुणो अम्हाण दोसाणि दूरं करन्ति। स–उवदेसजलेण अम्हाण बुद्धिं पक्खालयन्ति। जआ सीसा गुरूण समीवे पढिउं गच्छन्ति तआ ते एवं उवदिसन्ति–'सच्चं बोल्लह। धम्मं कुणह। सज्झाए पमायं मा कुणह। सआ देसस्स धम्मस्स सेवं कुणह।' अअएव गुरुणो अम्हाण मग्गदरिसआ सन्ति। जे सीसा सगुरुणा सेवं करन्ति, तेसु सद्धं करन्ति, ताहिन्तो णाणं गिण्हन्ति। ते सआ लोए सुहं लहन्ति।

अम्हाण जीवणे पिअरस्स ठाणं वि महत्तपुण्णं अत्थि। पिअरो अम्हाण पालओ अत्थि। सा नियएण परिस्समेण धणेण य अम्हे पालइ रक्खइ य। पिअरो कुडुम्बस्स पहाणो हवइ। अओ अम्हेहि तस्स आणं सआ पालणीअं। पिअरो केवलं पालओ ण होइ किन्तु सो बालआण मित्तो, विज्जादाआ वि हवइ। पिअरो सआ कुडुम्बस्स कल्लाणं चिन्तइ। अओ गुणवन्ता पुत्ता पिअरे सद्धं करन्ति, तस्स आणं मण्णन्ति तहा सेवं करन्ति।

अम्हाण पुज्जणीएसु जणणीए ठाणं सव्वोच्चं अत्थि। माआ सिसुं केवलं ण जम्मइ, किन्तु सा तस्स निम्माणं करइ। माआ अम्हे जणणइ। अम्हे माआअ दुद्धं पिबामो। माआअ दुद्धं सिसुणा जीवणं हवइ। जणणी सिसुं णेहं कुणइ। सा सअं दुक्खं सहइ किन्तु कआवि सिसुं दुक्खं ण देइ। अओ लोए पसिद्धं– 'माआ कआवि कुमाआ ण हवइ।' जे पुत्ता जणणीए आणं पालन्ति, ताअ सेवं कुणन्ति, ते लोए सुपुत्ता हवन्ति। इमा पुढवी वि जणस्स माआ अत्थि। अम्हे भारअमाआअ पुत्ता सन्ति। अअएव जम्मभूमीए रक्खणं अम्हाण कत्तव्वं अत्थि।

अम्हाण इमं कत्तव्वं अत्थि जओ अम्हे गुरूण, पिअरस्स, जणणीए एवं जम्मभूमीए आयरं सेवं य कुणमो। इमे अम्हाण पुज्जणीआ सन्ति।

अभ्यास

(क) पाठ में से सातों विभक्तियों के शब्द छांटकर लिखो :

प्रथमा ....

द्वितीया.......................... ....

तृतीया ....

चतुर्थी ....

पंचमी ....

षष्ठी ....

सप्तमी ....

(ख) प्रश्नों के उत्तर अपने शब्दों में लिखो :

(क) गुरु शिष्यों को क्या उपदेश देते हैं ?

(ख) पिता अपने कुटुम्ब के लिए क्या करता है ?

(ग) माता के सम्बन्ध में क्या प्रसिद्धि है ?

(घ) हमें पूज्यनीय व्यक्तियों के साथ क्या व्यवहार करना चाहिए ?

(ग) प्राकृत में अनुवाद करो :

वह मुझे देखता है। मैं उनको नमन करता हूँ। तुम ईश्वर को नमन करो। जीवों को मत मारो। मैं हाथ से पत्र लिखता हूँ। वह जीभ से फल चखती है। छात्र पुस्तकों के लिए धन माँगता है। बच्चा माता से डरता है। वृक्षों से पत्ते गिरते हैं। उन शरीरों से प्राण हैं। नदियों में पानी बालिकाओं का विद्यालय कहाँ है ? कमलों के लिए बच्चा रोता है। हम वहाँ पढ़ेंगे। तुम कहाँ खेलोगे। वह वहाँ नहीं गया। वे सब आज पुस्तकें पढ़ें।

रफ कार्य के लिए जगह –

(ख) असोग–अहिलेहाणि

1. जीवदया : मंसभक्खण–निसेहो

1. इयं धंमलिपि देवानं प्रियेन प्रियदसिना राआ लेखापिता।

2. इध न किं चि जीवं आरमित्पा प्रजूहितव्यं।

3. न च समाजो कतव्यो।

4. बहुकं हि दोसं समाजम्हि पसति देवानंप्रियो प्रियद्रसि राजा।

5. अस्ति पि तु एकचा समाजा साधुमता देवानंप्रियस प्रियदसिनो राओ।

6. पुरा महानसम्हि देवानं प्रियदसनो राओ अनुदिवसं बहूनि प्राण सतसहस्रानि आरभिसु सूपाथाय।

7. से अज यदा अयं धंमलिपी लिखित ती एव प्राणा आरभरे सूपाथाय द्वौ मोरा एको मगो, सो पि मगो न ध्रुवो।

8. एते पि त्री प्राणा पछा न आरभिसरे।

ख) अशोक के अभिलेख

1. जीव–दया : मांस–भक्षण का निषेध

1. यह धर्मलिपि देवताओं के प्रिय, प्रियदर्शी राजा (अशोक) द्वारा लिखायी गयी।

2. यहाँ पर कोई जीव मारकर हवन न किया जाय।

3. और न समाज (दोषपूर्ण आयोजन) किया जाय।

4. क्योंकि बहुत दोष समाज में देवानांप्रिय, प्रियदर्शी राजा देखता है।

5. ऐसे भी एक प्रकार के समाज है, जो देवानांप्रिय, प्रियदर्शी राजा के मत मे साधु (निर्दोष) हैं।

6. पहले देवानांप्रिय, प्रियदर्शी राजा की पाकशाला (रसोई) में प्रतिदिन कई लाख प्राणी सूप (सब्जी आदि) के लिए मारे जाते थे।

7. वे आज जब से यह धर्मलिपि लिखवायी गयी, तीन ही प्राणी सूप के लिए मारे जायेंगे– दो मोर (एवं) एक मृग। वह मृग भी हमेशा (निश्चित)नहीं।

8. ये तीन प्राणी भी पीछे (आगे चलकर) नहीं मारे जायेंगे।

2. लोगोवयारी कज्जाणि

1. सर्वत विजितम्हि देवानंप्रियदसनो राओ एवमपि प्रचंतेसु यथा—चोडा पाडा सतियपुत केतलपुतो आतंबपंणी अंतियोको योनराजा, ये वा पि तस अंतियकस सामीपं राजानो सर्वत्र देवानंप्रियस प्रियदसिनो राओ द्वे चिकीछकता— मनुसचिकीछा च पशुचिकीछा च।

2. ओसुडानि च यानि—मनुसोपगानि च पेसापगानि च यत यत नास्ति, सर्वत्र हरापितानि च रोपापितानि च।

3. मूलानि च फलानि च यत यत नास्ति सर्वत्रा हारापितानि रोपापितानि च।

4. पंथेसू कूपा च खानापिता, ब्रछा च रोपापिता पसुमनुसानं।

3. समवायो एव साधु

1. देवानांपिये पियदसि राजा सब पासंडानि च पवजितानि च घरस्तानि च पूजयति दानेन च विविधाय च पूजाय पूजयति ने।

2. न तु तथा दानं व पूजा व देवानंपिओ मंत्रते यथा कीति सारवढी अस सब पासंडानं।

3. सारवढी तु बहुविधा। तस तु इदं मूलं य वचिगुती किंती आत्मपासंडपूजा व परपासंडगरहा व न भवे अप्रकरणम्हि।

4. लहुका व अस तम्हि तम्हि प्रकरणे। पूजेतया तू एव परपासंडा तेन तेन प्रकरणेन। एवं करुं आत्मपासंडं च वढयति परपासंडस च उपकरोति।

5. तदंञथा करोतो आत्मपासंडं च छणति परवासंडस च पि अयकरोति।

6. ययो हि कोचि आत्मपासंडं पूजयति परपासंडं वा गरहति सवं आत्मपासंडभतिया किंति आत्मपासंडं दीपयेम इति सो च पुन तथ करातो आत्मपासंडं वाढतरं उपहनाति।

7. त समयावो एव साधु किंति अंञमंञस धंमं स्रुणारु च सुसुंसेर च। एवं हि देवानंपियस इछा किंति सवपासंडा बहुश्रुता च असु, कलाणागमा च असु।

8. ये च तत्र तते प्रसंना तेहि वतव्यं—देवानंपियो नो तथा दानं व पूजां व मंञते यथा किंति सारवढी अस सर्वपासंडानं।

9. बहुका च एताय अथा व्यापता धंममहामाता य इथीझखमहामाता च वचभूमीका च अञे च निकाया। अयं च एतस फल य आत्मपासंडवढी च होती धंमस च दीपना।

2. लोकोपकारी कार्य

1. देवानांप्रिय, प्रियदर्शी राजा के राज्य में सर्वत्र, इसी प्रकार प्रत्यन्तों में चोल पाण्ड्य, सत्यपुत्र, केरलपुत्र, ताम्रपर्णी तक यवनराजा अन्तियोक, उस अन्तियोक के समीप जो राजा हैं, (वहाँ) सर्वत्र, देवानांप्रिय, प्रियदर्शी राजा को दो (प्रकार की) चिकित्साएँ व्यवस्थित हैं– मनुष्यों की चिकित्सा और पशुओं की चिकित्सा।

2. मनुष्योपयोगी और पशुपयोगी जो औषधियाँ जहाँ–जहाँ नहीं हैं (वे) सब जगह लायी गयी हैं और रोपी (उत्पन्न की) गयी हैं।

3. और मूल (जड़ें) तथा फल जहाँ–जहाँ नहीं हैं (वे) सब जगह लाये गये हैं।

4. पशु और मनुष्यों के उपयोग के लिए पंथों (रास्तों) में कुँए खोदे गये हैं और वृक्ष रोपे गये हैं।

3. समन्वय ही श्रेष्ठ है

1. देवानांप्रिय, प्रियदर्शी राजा सभी धार्मिक सम्प्रदायों और प्रव्रजितों (साधु–जीवन वालों) और गृहस्थों को पूजता है तथा वह दान और विविध प्रकार की पूजा से (उन्हें) पूजता है।

2. किन्तु दान और पूजा को देवानांप्रिय उतना नहीं मानता, जितना इस बात को (महत्त्व देता है) कि सभी सम्प्रदायों के सार (तत्त्व) की वृद्धि हो।

3. सार–वृद्धि कई प्रकार की होती है। किन्तु उसका यह मूल है–वचन का संयम। कैसे ? अनुचित अवसरों पर अपने सम्प्रदाय की प्रशंसा और दूसरों के सम्प्रदाय की निन्दा नहीं होनी चाहिए।

4. किसी–किसी अवसर पर (कारण से) हलकी (आलोचना) होनी चाहिए। किन्तु उन–उन प्रमुख कारणों से दूसरे सम्प्रदाय पूजे जाने चाहिए। ऐसा करते हुए (मनुष्य) अपने सम्प्रदाय को बढ़ाता है तथा दूसरे सम्प्रदाय का उपकार करता है।

5. इसके विपरीत करता हुआ (व्यक्ति) अपने सम्प्रदाय को क्षीण करता है और दूसरे सम्प्रदाय का भी अपकार करता है–

6. जो कोई (व्यक्ति) अपने सम्प्रदाय की पूजा करता है तथा दूसरे सम्प्रदाय की निन्दा करता है– सब अपने सम्प्रदाय की भक्ति (पक्ष) के कारण। कैसे? कि किस प्रकार अपने सम्प्रदाय का प्रचार (दीपन) किया जाए। वह ऐसा करता हुआ अपने सम्प्रदाय की बहुत हानि करता है।

7. इसलिए (समवाय) ही साधु (श्रेष्ठ) है। कैसे ? एक दूसरे के धर्म को सुनना और सुनाना चाहिए। ऐसा ही देवानांप्रिय की इच्छा है। कैसी ? कि सभी सम्प्रदाय बहुश्रुत हों और कल्याणगामी हों।

8. जो अपने–अपने सम्प्रदाय में अनुरक्त हों, वे (दूसरे से) कहें– देवानांप्रिय दान और पूजा को उतना नहीं मानते जितना कि इस बात को कि सब सम्प्रदायों में सार की वृद्धि हो।

9. इस प्रयोजन के लिये बहुत से धर्ममहामात्र, और स्त्री–अध्यक्ष–महामात्र, व्रजभूमिक (यात्री–रक्षक) और अन्य (अधिकारी) वर्ग नियुक्त हैं। इसका यह फल है कि अपने सम्प्रदाय की वृद्धि और धर्म का दीपन (प्रचार) होता है।

(ग) प्राकृत कृतियों का परिचय

1. आचार्यभक्ति

देसकुलजाइसुद्धा, विसुद्धमणवयणकायसंजुत्ता।
तुम्हं पायपयोरुहमिह मंगलमत्थु मे णिच्चं।। 1।।

सागरपरसमयविदण्हू, आगमहेदूहिं चावि जाणित्ता।
सुसमत्था जिणवयणे, विणये सत्ताणुरूवेण।। 2।।

बालगुरुगुड्ढसेहे, गिलाणथेरे य खमणसंजुत्ता।
वट्टावयणा अण्णे, दुस्सीले चावि चाणित्ता।। 3।।

वदसमिदिगुत्तिजुत्ता, मुत्तिपहे ठावया पुणो अण्णे।
अज्झावयगुणणिलये, साहुगुणेणावि संजुत्ता ।। 4।।

उत्तमखमाए पुढवी, पसण्णभावेण अच्छजलसरिसा।
कम्मिंधणदहणादो, अगणी वाऊ असंगादो।। 5।।

णयणमिव णिरुवलेवा, अक्खोहा सायरुव्व मुणिवसहा।
एरिसगुणणिलयाणं, पायं पणमामि सुद्धमणो।। 6।।

संसारकाणणे पुण, बंभममाणेहिं भव्वजीवेहि।
णिव्वाणस्स हु मग्गो, लद्धो तुम्हं पसाएण।। 7।।

अविसुद्धलेस्सरहिया, विसुद्धलेस्साहि परिणदा सुद्धा।
रुहट्टे पुण चत्ता, धम्मे सुक्के य संजुत्ता।। 8।।

तुम्हं गुणग़णसंथुदि, अजाणमाणेण जो मया वुत्तो।
देउ मम बोहिलाहं, गुरुभत्तिजुदत्थओ णिच्चं।। 9।।

उग्गईहावायाधारणगुणसंपदेहिं संजुत्ता।
सुत्तत्थभावणाए, भावियमाणेहिं वंदामि।। 10।।

अंचलिका

इच्छामि भंते ! आयरियभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाणसम्मदंसण सम्मचारित्तजुत्ताणं पंचविहाचाराणं, आयारादिसुदणाणोव– देसयाणं उवज्झायाणं, तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं, णिच्चकालं अच्चेमि, पुज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होदु मज्झं।

1. आचार्यभक्ति

1. देश, कुल और जाति से विशुद्ध तथा विशुद्ध, मन, वचन, काय से संयुक्त हे आचार्य ! तुम्हारे चरणकमल मुझे इस लोक में नित्य ही मंगलरूप हों।

2. वे आचर्य स्वसमय और परसमय के जानकार होते हैं, आगम और हेतुओं के द्वारा पदार्थों को जानकर जिनवचनों के कहने में अत्यन्त समर्थ होते हैं और शक्ति अथवा प्राणियों के अनुसार विनय करने में समर्थ रहते हैं।

3. वे आचार्य बालक, गुरु, वृद्ध, शैक्ष्य, रोगी और स्थविर मुनियों के विषय में क्षमा से सहित होते हैं तथा अन्य दुःशील शिष्यों को जानकर सन्मार्ग में बर्ताते हैं–लगाते हैं।

4. वे आचार्य व्रत, समिति और गुप्ति से सहित होते हैं, अन्य जीवों को मुक्ति के मार्ग में लगाते हैं, उपाध्यायों के गुणों के स्थान होते हैं तथा साधु परमेष्ठी के गुणों से संयुक्त रहते हैं।

5. वे आचार्य उत्तम क्षमा से पृथिवी के समान हैं, निर्मल भावों से स्वच्छ जल के सदृश हैं, कर्मरूपी ईंधन के जलाने से अग्नि स्वरूप हैं तथा परिग्रह से रहित होने के कारण वायुरूप हैं।

6. वे मुनिश्रेष्ठ– आचार्य आकाश की तरह निर्लेप और सागर की तरह क्षेभरहित होते हैं। ऐसे गुणों के घर आचार्य परमेष्ठी के चरणों को मैं शुद्ध मन से नमस्कार करता हूँ।

7. हे आचार्य ! संसाररूपी अटवी में भ्रमण करने वाले भव्य जीवों ने आपने प्रसाद से निर्वाण का मार्ग प्राप्त किया है।

8. वे आचार्य अविशुद्ध अर्थात् कृष्ण, नील और कापोत लेश्या से रहित तथा विशुद्ध अर्थात् पीत पद्म और शुक्ल लेश्याओं से युक्त होते हैं। रौद्र तथा आर्त्तध्यान से त्यागी और धर्म्य तथा शुक्लध्यान से सहित होते हैं।

9. वे आचार्य, आगम के अर्थ की भावना से भाव्यमान अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा नामक गुरुरूपी संपदाओं से संयुक्त होते हैं। उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ।

10. हे आचार्य ! आपके गुणसमूह की स्तुति को न जानते हुए मैंने जो बहुत भारी भक्ति से युक्त स्तवन कहा है, वह मेरे लिए निरन्तर बोधिलाभ–रत्नत्रय की प्राप्ति प्रदान करे।

अंचलिका

हे भगवान् ! मैंने आचार्यभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया है। उसकी आलोचना करना चाहता हूँ। जो सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र से युक्त है तथा पाँच प्रकार के आचार का पालन करते हैं ऐसे आचार्यों की, आचारांग आदि श्रुतज्ञान का उपदेश देने वाले उपाध्यायों की और रत्नत्रयरूपी गुणों के पालन करने में लीन समस्त साधुओं की मैं निरन्तर आर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वंदना करता हूँ। नमस्कार करता हूँ, उसके फलस्वरूप मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति में गमन हो, समाधिमरण हो और मेरे लिए जिनेन्द्र भगवान् के गुणों की प्राप्ति हो।

2. अट्ठपाहुड–गाहा

सम्मत्तरयण भट्ठा जाणंता बहुविहाइं सत्थाइं।
आराहणाविरहिया भमंति तत्थेव तत्थेव ।। 1 ।।

सम्मत्तसलिलपवहो णिच्चं हियए पवट्टए जस्स।
कम्मं वालुयवरणं बंधुच्चिय णासए तस्स ।। 2 ।।

जे दंसणेसु भट्ठा णाणे भट्ठा चरित्तभट्ठा य।
एदे भट्ठविभट्ठा सेसं पि जणं विणासंति ।। 3 ।।

सम्मत्तादो णाणं णाणादो सव्वभावउवलद्धी।
उवलद्धपयत्थे पुण सेयासेयं वियाणेदि ।। 4 ।।

सेयासेयविदण्हू उद्धुददुस्सील सीलवंतो वि।
सीलफलेणब्भुदयं तत्तो पुण लहइ णिव्वाणं ।। 5 ।।

जिणवयणमोसहमिणं विसयसुहविरेयणं अमिदभूयं।
जरमरणवाहिहरणं खयकरणं सव्वदुक्खाणं ।। 6 ।।

जीवादी सद्दहणं सम्मत्तं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
ववहारा णिच्छयदो अप्पा णं हवइ सम्मत्तं ।। 7 ।।

एवं जिणपण्णत्तं दंसणरयणं धरेह भावेण।
सारं गुणरयणत्तय सोवाणं पढम मोक्खस्स ।। 8 ।।

णाणं णरस्स सारो सारो वि णरस्स होइ सम्मत्तं।
सम्मत्ताओ चरणं चरणाओ होइ णिव्वाणं ।। 9 ।।

सुत्तम्मि जाणमाणो भवस्स भवणासणं च सो कुणदि।
सूई जहा असुत्ता णासदि सुत्ते सहा णो वि ।। 10 ।।

पुरिसो वि जो ससुत्तो ण विणासइ सो गओ वि संसारे।
सच्चेयणपच्चक्खं णासदि तं सो अदिस्समाणो वि।। 11।।

2. अष्टपाहुड–गाथाएँ

1. (जो व्यक्ति) सम्यक्त्वरूपी रत्न (समताभाव में रुचि) से वंचित (हैं) (वे) (यदि) नाना प्रकार के (लौकिक–आध्यात्मिक) शास्त्रों को समझते हुए जीते (हैं), (तो भी) (उनके द्वारा) परम शान्ति (मानसिक समता) के मार्ग का परित्याग किया हुआ होने के कारण, (वे) वहाँ ही (मानसिक तनाव में) चक्कर काटते हैं।

2. जिसके हृदय में सम्यक्त्वरूपी जल का प्रवाह नित्य विद्यमान होता है, उसका कर्म रूपी बंधन (मानसिक तनाव) (जो) बालू के ढेर (की तरह) (है)निश्चय ही नष्ट हो जाता है।

3. जो सम्यग्दर्शन (समता में रुचि) से वंचित (हैं), (सद्) ज्ञान से रहित (हैं), तथा चारित्र से गिरे हुए हैं, (ऐसे) ये (लोग) भटके हुए (तथा) पतित (होते हैं) (और) अन्य सब संसार को भी भटकाते हैं।

4. सम्यक्त्व से ज्ञान (सम्यक्) (होता है), (ऐसे) ज्ञान से सब पदार्थों का (मूल्यात्मक) ज्ञान (होता है), (और) (ऐसे) जाने हुए पदार्थ (समूह) के होने के कारण (वह) निश्चय ही शुभ और अशुभ को जान लेता है।

5. शुभ और अशुभ को जानने वाला ही (ऐसा व्यक्ति होता है) (जिसके द्वारा) दुराचरण नष्ट कर दिया गया (है) (तथा) (वह) चारित्रवान भी (हुआ है)। (वह) शील (चारित्र) के प्रभाव से (आध्यात्मिक) सुख–सम्पन्नता प्राप्त करता है, फिर उस कारण से परम शान्ति (समता) (प्राप्त करता है)।

6. यह जिन–वचनरूपी औषधी अमृत–सदृश (होती है), (तथा) विलास में (उत्पन्न अधम) सुख की विनाशक, जरा–मरणरूपी व्याधि को हरनेवाली (और) सभी दुःखों का नाश करने वाली (होती है)।

7. व्यवहार से जीव आदि (तत्त्वों) में श्रद्धा सम्यक्त्व (सम्यग्दर्शन) (है), निश्चय से आत्मा ही सम्यक्त्व होती है, (ऐसा) अरहंतों द्वारा कहा गया (है)।

8. अरहंतों द्वारा इस प्रकार (यह) कहा गया है (कि) सम्यग्दर्शन रूपी रत्न तीन रत्नों के तिगड्डे का सार (है), (और) मोक्ष (परम शान्ति/समता भाव) के लिए प्रथम सोपान है, (इसलिए) (तुम सब) भावपूर्वक (इसको) धारण करो।

9. (यद्यपि) ज्ञान मनुष्य के लिए सार है, तथापि सम्यक्त्व मनुष्य के लिए (अधिक) सार होता है। सम्यक्त्व से (सम्यक्) चारित्र (होता है) (और) (सम्यक्) चारित्र से परम शान्ति/समता भाव उत्पन्न होती/होता है।

10. जैसे डोरे रहित सुई खो जाती है (तथा) डोरे से युक्त (सुई) कभी नहीं (खोती है), (वैसे ही) भव्य (परम शान्ति/समता भाव को निश्चय ही प्राप्त करने वाले) के लिए (यह कहा गया है कि) वह सूत्र (आगम) को समझता हुआ संसार (मानसिक तनाव) का नाश निश्चय ही करता है।

11. संसार में ही स्थित वह पुरुष भी जो आगम (आध्यात्मिक ज्ञान) सहित है, बर्बाद नहीं होता है। (इसका कारण है कि) (आध्यात्मिक ज्ञान से) स्वचेतना का प्रत्यक्ष ज्ञान (हो जाता है)। (इसलिए) वह (दूसरों के द्वारा) न देखा जाता हुआ भी उस (तनाव/दुःख) को मिटा देता है।

सुत्तत्थं जिणभणियं जीवाजीवादिबहुविहं अत्थं।
हेयाहेयं च तहा जो जाणइ सो हु सद्दिट्ठी ।। 12 ।।

जं सुत्तं जिणउत्तं ववहारो तह या जाण परमत्थो ।
तं जाणिऊण जोई लहइ सुहं खवइ मलपुंजं ।। 13 ।।

अह पुण अप्पा णिच्छदि धम्माइं करेइ णिरवसेसाइं।
तह वि ण पावदि सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो।। 14 ।।

एएण कारणेण य तं अप्पा सद्दहेह तिविहेण।
जेण य लहेइ मोक्खं तं जाणिज्जइ पयत्तेण ।। 15 ।।

अण्णाणं मिच्छत्तं वज्जहि णाणे विसुद्धसम्मत्ते ।
अह मोहं सारंभं परिहर धम्मे अहिंसाए ।। 16 ।।

पाऊण णाणसलिलं णिम्मलसुविसुद्धभावसंजुत्ता।
हुंति सिवालयवासी तिहुवणचूडामणी सिद्धा ।। 17।।

णाणगुणेहिं विहीणा ण लहंते ते सुइच्छियं लाहं।
इय णाउं गुणदोसं तं सण्णाणं वियाणेहि ।। 18।।

चारित्तसमारूढो अप्पा सुपरं ण ईहए णाणी।
पावइ अइरेण सुहं अणोवमं जाण णिच्छयदो ।। 19।।

संजमसंजुत्तस्स य सुझाणजोयस्स मोक्खमग्गस्स।
णाणेण लहदि लक्खं तम्हा णाणं च णायव्वं ।। 20।।

जह णवि लहदि हु लक्खं रहिओ कंडस्स वेज्झयविहीणो।
तह णवि लक्खदि लक्खं अण्णाणी मोक्खमग्गस्स ।। 21।।

णाणं पुरिसस्स हवदि लहदि सुपुरिसो वि विणयसंजुत्तो।
णाणेण लहदि लक्खं लक्खंतो मोक्समग्गस्स ।। 22।।

12. जो (व्यक्ति) अरहंत द्वारा कथित सूत्र के अर्थ को, जीव–अजीव आदि नाना प्रकार के पदार्थ को, तथा हेय और उपादेय को भी जानता है, वह निश्चय ही सम्यग्दृष्टि (होता है)।

13. जो सूत्र अरहंत द्वारा कहा गया है, (जिसकी कथन पद्धति में) (अरहंत द्वारा) व्यवहार तथा परमार्थ (नय) (ग्रहण किया गया है) (उसे) (तुम) जानो, (क्योंकि) (ऐसे) उस (सूत्र) को जानकर योगी कर्म–मल समूह को नष्ट करता है। (और) सुख प्राप्त करता है।

14. यदि (कोई) आत्मा को (तो) नहीं चाहता है, परन्तु (दूसरी) सकल धर्म–क्रियाओं को करता है, तो भी वह पूर्णता प्राप्त नहीं करता है, फिर (ऐसा व्यक्ति) संसार (मानसिक तनाव) में (ही) स्थित कहा गया है।

15. इस कारण से उस आत्मा पर ही तीन प्रकार से (मन–वचन–काय से) श्रद्धा करो। चूँकि जिससे परम शान्ति प्राप्त होती है, वह (ही) प्रयत्न पूर्वक समझा जाना चाहिए।

16. (तू) ज्ञान से होने पर अज्ञान को, निर्दोष सम्यक्त्व के होने पर मिथ्यात्व को, और अहिंसा–धर्म के होने पर हिंसा सहित मूर्च्छा को त्याग।

17. (जो) (व्यक्ति) ज्ञानरूपी जल को पीकर निर्मल, शुद्ध भावों से युक्त (है), (वे) त्रिभुवन के आभूषण (होते हैं), (तथा) शिवालय में रहने वाले मुक्त (व्यक्ति) होते हैं।

18. (जो) (सम्यक्) ज्ञान–गुण से रहित (हैं), वे भली प्रकार से (भी) चाहे हुए लाभ को प्राप्त नहीं करते हैं, इस प्रकार गुण–दोष को जानने के लिए (तू) उस सम्यग्ज्ञान को समझ।

19. जो ज्ञानी चारित्र पर पूर्णतः आरूढ़ (है), (वह) (अपनी) आत्मा में श्रेष्ठ (भी) पर वस्तु को नहीं देखता है। (अतः) (वह) शीघ्र अनुपम सुख प्राप्त करता है, (तुम) निश्चय से जानो।

20. संयम से जुड़े हुए तथा श्रेष्ठ ध्यान के लिए उपयुक्त (ऐसे) मोक्ष मार्ग (समता मार्ग) के लक्ष्य को (कोई भी) परम ज्ञान से प्राप्त करता है (कर सकता है), इसलिए परम ज्ञान निश्चय ही समझा जाना चाहिए।

21. जैसे बींधने योग्य (निशाने) रहित बाण के द्वारा रथिक लक्ष्य को बिल्कुल ही नहीं देखता है वैसे ही ज्ञान रहित (व्यक्ति) (अज्ञान के द्वारा) मोक्ष मार्ग (समता–मार्ग) में लक्ष्य को (बिल्कुल ही) नहीं देखता है।

22. ज्ञान आत्मा में होता है, विनय से जुड़ा हुआ सत् पुरुष ही (उसको) प्राप्त करता है। (वह) मोक्ष मार्ग (समता–मार्ग) के लक्ष्य को देखता हुआ (उस लक्ष्य को) ज्ञान के द्वारा प्राप्त करता है।

(घ) प्राकृत सिद्धान्त ग्रंथ

1. समणसुत्तं गाहा

1. पंच परमेट्ठी

णमो अरहंताणं। णमो सिद्धाणं। णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं। णमो लोए सव्वसाहूणं।। 1।।

एसो पंचणमोक्कारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं।। 2।।

अरहंता मंगलं। सिद्धा मंगलं। साहू मंगलं।
केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।। 3।।

अरहंता लोगुत्तमा। सिद्धा लोगुत्तमा। साहू लोगुत्तमा।
केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।। 4।।

अरहंते सरणं पव्वज्जामि। सिद्धे सरणं पव्वज्जामि।
साहू सरणं पव्वज्जामि।
केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।। 5।।

झायहि पंच वि गुरवे, मंगलचउसरणलोयपरियरिए।
णर–सुर–खेयर–महिए, आराहणणायगे वीरे।। 6।।

घणघाइकम्ममहणा, तिहुवणवरभव्व–कमलमत्तंडा।
अरिहा अणंतणाणी, अणुवमसोक्खा जयंतु जए।। 7।।

अट्ठविहकम्मवियला, णिट्ठियकज्जा पणट्ठसंसारा।
दिट्ठसयलत्थसारा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु।। 8।।

पंचमहव्वयतुंगा तक्कालिय–सपरसमय–सुदधारा।
णाणागुणगणभरिया, आइरिया मम पसीदंतु।। 9।।

अण्णाणघोर तिमिरे, दुरंततीरम्हि हिंडमाणाणं।
भवियाणुज्जोययरा, उवज्झाया वरमदिं देंतु।। 10।।

थिरधरियसीलमाला, ववगयराया जसोहपडिहत्था।
बहुविणयभूसियंगा, सुहाइं साहू पयच्छंतु।। 11।।

अरिहंता, असरीरा, आयरिया, उवज्झाय मुणिणो।
पंचक्खरनिप्पण्णो, ओंकारो पंच परमिट्ठी ।। 12।।

1. समणसूत्र गाथाएँ

1. पंच परमेष्ठी

1. अरिहंतों को नमस्कार। सिद्धों को नमस्कार। आचार्यों को नमस्कार। उपाध्यायों को नमस्कार। लोक में सब साधुओं को नमस्कार।

2. यह पंच–नमस्कार सब पापों का नाश करने वाला (है), और (इस कारण से यह) सब मंगलों में प्रथम मंगल होता है।

3–5. अरिहंत मंगल (हैं)। सिद्ध मंगल (हैं)। साधु मंगल (हैं)। केवली द्वारा उपदिष्ट धर्म मंगल हैं।

अरिहंत लोक में उत्तम (हैं)। सिद्ध लोक में उत्तम (हैं)। साधु लोक में उत्तम (हैं)। (मैं) केवली द्वारा उपदिष्ट धर्म लोक में उत्तम (हैं)। (मैं) अरहंतों की शरण में जाता हूँ। मैं सिद्धों की शरण में जाता हूँ। (मैं) साधुओं की शरण में जाता हूँ। (मैं) केवली द्वारा उपदिष्ट धर्म की शरण में जाता हूँ।

6. कल्याणकारी, चारों (गतियों में) शरण देने वाले, लोक को विभूषित किए हुए (करने वाले), मनुष्यों, देवताओं, तथा विद्याधरों द्वारा पूजित, आराधना के लिए श्रेष्ठ (तथा) वीर (ऊर्ध्वगामी ऊर्जा वाले)– (इन) पाँच गुरुओं अर्थात् आध्यात्मिक स्तम्भों को ही (तुम) ध्याओ।

7. प्रगाढ़ घातिकर्मों के विनाशक, अनन्तज्ञानी, अनुपम सुख (मय) (तथा) त्रिभुवन में विद्यमान मुक्तिगामी जीवरूपी कमलों (के विकास) के लिए सूर्यरूपी अरहंत जगत में जयवंत हों।

8. सिद्ध (जो) आठ प्रकार के कर्मों से रहित (हैं), (जिनके द्वारा) (सभी) प्रयोजन पूर्ण किए हुए (हैं), (तथा) (जिनके द्वारा) संसार–चक्र नाश को प्राप्त हुए (हैं) समग्र तत्त्वों के सार जाने गए (हैं), (वे) मेरे लिए निर्वाण (मार्ग) को दिखलावें।

9. पाँच महाव्रतों से उन्नत, उस समय सम्बन्धी अर्थात् समकालीन स्व–पर सिद्धांत के श्रुत को धारण करने वाले (तथा) अनेक प्रकार के गुण–समूह से पूर्ण आचार्य मेरे लिए मंगलप्रद हों।

10. (जिस अज्ञान रूपी अंधकार के) छोर पर पहुँचना कठिन (है), (उस) अज्ञानरूपी घने अंधकार में भ्रमण करते हुए संसारी (जीवों) के लिए (ज्ञानरूपी) प्रकाश को करने वाले उपाध्याय (मुझे) श्रेष्ठ मति प्रदान करें।

11. साधु (जो) यश–समूह से पूर्ण (हैं), (जिनके द्वारा) शीलरूपी मालाएँ दृढ़तापूर्वक धारण की गई (हैं), (जिनके द्वारा) राग दूर किए गए (हैं) (तथा जिनके द्वारा) शरीर के अंग प्रचुर विनय से अलंकृत हुए (हैं), (वे) मुझे (अनेक) सुख प्रदान करें।

12. अरिहंत, अशरीर (सिद्ध), आचार्य, उपाध्याय (तथा) मुनि– ये पाँच परमेष्ठी अर्थात् पाँच आध्यात्मिक स्तम्भ (हैं)। (इनके प्रथम) पाँच अक्षरों (अ+अ+आ+उ+म) से निकला हुआ 'ओम्' (होता है)।

उसहमजियं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे।। 13।।

सुविहिं च पुप्फयंतं, सीयलं सेयंसं वासुपुज्जं च।
विमलमणंत–भयवं, धम्मं संतिं च वंदामि।। 14।।

कुंथुं च जिणवरिंदं, अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदामि रिट्ठणेमिं, तह पासं वड्ढमाणं च।। 15।।

चंदेहि णिम्मलयरा, आइच्चेहिं अहियं पयासंता।
सायरवरगंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु।। 16।।

2. जिनशासनसूत्र

जमल्लीणा जीवा, तरंति संसारसायरमणंतं।
तं सव्वजीवसरणं, णंददु जिणसासणं सुइरं।। 17।।

जिणवयणमोसहमिणं, विसयसुह–विरेयणं अमिदमयं।
जरमरणवाहिहरणं, खयकरणं सव्वदुक्खाणं।। 18।।

अरहंतभासियत्थं, गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
पणमामि भत्तिजुत्तो, सुदणाणमहोदहिं सिरसा।। 19।।

तस्स मुहुग्गदवयणं, पुव्वावरदोसविरहियं सुद्धं।
आगममिदि परिकहियं, तेण दु कहिया हवंति तच्चत्था।। 20।।

जिणवयणे अणुरत्ता, जिणवयणं जे करेंति भावेण।
अमला असंकिलिट्ठा, ते होंति परित्तसंसारी।। 21।।

जय वीयराय ! जयगुरु! होउ मम तुह पभावओ भयवं।
भवणिव्वेओ मग्गाणुसारिया इट्ठफलसिद्धी।। 22।।

ससमय–परसमयविऊ, गंभीरो दित्तिमं सिवो सोमो।
गुणसयकलिओ जुत्तो, पवयणसारं परिकहेउं।। 23।।

जं इच्छसि अप्पणतो, जं च ण इच्छसि अप्पणतो।
तं इच्छ परस्स वि या, एत्तियगं जिणसासणं।। 24।।

13. मैं 1. ऋषभ, 2. अजित, 3. सम्भव, 4. अभिनन्दन, 5. सुमति, 6. पद्मप्रभु, 7. सुपार्श्व तथा 8. चन्द्रप्रभु को वन्दन करता हूँ।

14. मैं 9. सुविधि (पुष्पदंत), 10. शीतल, 11. श्रेयांस, 12. वासुपूज्य, 13. विमल, 14. अनन्त, 15. धर्म, 16. शान्ति को वन्दन करता हूँ।

15. मैं 17. कुन्थु, 18. अर, 19. मल्लि, 20. मुनिसुव्रत, 21. नमि, 22. अरिष्टनेमि, 23. पार्श्व तथा 24. वर्धमान को वन्दन करता हूँ।

16. चन्द्र से अधिक निर्मल, सूर्य से अधिक प्रकाश करने वाले, सागर की भांति गम्भीर सिद्ध भगवान् मुझे सिद्धि (मुक्ति) प्रदान करें।

2. जिनशासनसूत्र

17. जिसमें लीन होकर जीव अनन्त संसार–सागर को पार कर जाते हैं तथा जो समस्त जीवों के लिए शरणभूत है, वह जिनशासन चिरकाल तक समृद्ध रहे।

18. यह जिनवचन विषयसुख का विरेचन, जरा–मरणरूपी व्याधि का हरण तथा सब दुःखों का क्षय करने वाला अमृततुल्य औषध है।

19. जो अर्हत् के द्वारा अर्थरूप में उपदिष्ट है तथ गणधरों के द्वारा सूत्ररूप में सम्यक् गुंफित है, उस श्रुतज्ञानरूपी महासिन्धु को मैं भक्तिपूर्वक सिर नवाकर प्रणाम करता हूँ।

20. अर्हत् के मुख से उद्‌भूत, पूर्वापरदोष–रहित शुद्ध वचनों को आगम कहते हैं। उस आगम में जो कहा गया है वही सत्यार्थ है। (अर्हत् द्वारा उपदिष्ट तथा गणधर द्वारा संकलित श्रुत आगम है।)

21. जो जिनवचनं में अनुरक्त है तथा जिनवचनों का भावपूर्वक आचरण करते हैं, वे निर्मल और असंक्लिष्ट होकर परीत–संसारी (अल्प जन्म–मरण वाले) हो जाते हैं।

22. हे वीतराग! हे जगद्‌गुरु! हे भगवन्! आपके प्रभाव से मुझे संसार से विरक्ति, मोक्षमार्ग का अनुसरण तथा इष्टफल की प्राप्ति होती रहे।

23. जो स्वसमय व परसमय का ज्ञाता है, गम्भीर, दीप्तिमान, कल्याणकारी और सौम्य है तथा सैकड़ों गुणों से युक्त, है, वही निर्ग्रन्थ प्रवचन का सार को कहने का अधिकारी है।

24. जो तुम अपने लिए चाहते हो वही दूसरों के लिए भी चाहो तथा जो तुम अपने लिए नहीं चाहते वह दूसरों के लिए भी न चाहो। यही जिनशासन है– तीर्थंकर का उपदेश है।

2 वसुनन्दि–श्रावकाचार

जूयदोसो

जूयं खेलंतस्स हु कोहो माया य माण–लोहा य।
एए हवंति तिव्वा पावइ पावं तदो बहुगं ।। 60।।

पावेण तेण जर–मरण–वोचिपउरम्मि दुक्खसलिलम्मि।
चउगइगमणावत्तम्मि हिंडइ भवसमुद्दम्मि।। 61।।

तत्थ वि दुक्खमणंतं छेयण–भेयण विकत्तणाईणं।
पावइ सरणविरहिओ जूयस्स फलेण सो जीवो।। 62।।

ण गणेइ इट्ठमित्तं ण गुरुं ण य मायरं पियरं वा।
जूबंधो वुज्जाइं कुणइ अकज्जाइं बहुयाइं।। 63।।

सजणे य परजणे वा देसे सव्वत्थ होइ णिल्लज्जो।
माया वि ण विस्सासं वच्चइ जूयं रमंतस्स।। 64।।

अग्गि–विस–चोर–सप्पा दुक्खं थोवं कुणंति इहलोए।
दुक्खं जणेइ जूयं णरस्स भवसयसहस्सेसु।। 65।।

अक्खेहि णरो रहिओ ण मुणइ सेसिंदिएहिं वेएइ।
जूयंधो ण य केण वि जाणइ संपुण्णकरणो वि।। 66।।

अलियं करेइ सवहं जंपइ मोसं भणेइ अइदुट्टं।
पासम्मि बहिणि–मायं सिसुं पि हणेइ कोहंधो।। 67।।

ण य भुंजइ आहारं णिद्दं ण लहेइ रत्ति–दिण्णं ति।
कत्थ वि ण कुणेइ रइं अत्थइ चिंताउरो णिच्चं।। 68

इच्चेवमाइबहवो दोसे णाऊण जूयरमणम्मि।
परिहरियव्वं णिच्चं दंसणगुणमुव्वहंतेण ।। 69।।

द्यूतक्रीड़ा–दोष वर्णन

60. जूआ खेलने वाले पुरुष के क्रोध, मान, माया और लोभ ये चारों कषाय तीव्र होती हैं, जिससे जीव अधिक पाप को प्राप्त होता है।

61. उस पाप के कारण यह जीवन जन्म, जरा, मरणरूपी तरंगों वाले, दुःखरूप सलिल से भरे हुए और चतुर्गति–गमनरूपी आवर्तो (भंवरों) से संयुक्त ऐसे संसार–समुद्र में परिभ्रमण करता है।

62. उस संसार में जूआ खेलने के फल से यह जीवन शरण–रहित होकर छेदन, भेदन कर्तन आदि के अनन्त दुःख को पाता है।

63. जूआ खेलने से अंधा हुआ मनुष्य इष्ट मित्र को कुछ नहीं गिनता है, न गुरु को, न माता को और न पिता को ही, कुछ समझता है, किन्तु स्वच्छन्द होकर पापमय बहुत से अकार्यों को करता है।

64. जूआ खेलने वाला पुरुष स्वजन में, परजन में, स्वदेश में, परदेश में, सभी जगह निर्लज्ज हो जाता है। जुआ खेलने वाले का विश्वास उसकी माता तक भी नहीं करती है।

65. इस लोक में अग्नि, विष, चोर और सर्प तो अल्प दुख देते हैं, किन्तु जूआ का खेलना मनुष्य के हजारों लाखों भवों में दुःख को उत्पन्न करता है।

66. आँखों से रहित मनुष्य यद्यपि देख नहीं सकता है, तथापि शेष इन्द्रियों से तो जानता है। परन्तु जूआ खेलने में अंधा हुआ मनुष्य सम्पूर्ण इन्द्रियों वाला हो करके भी किसी के द्वारा कुछ नहीं जानता है।

67. वह झूठी शपथ करता है, झूठ बोलता है, अति दुष्ट वचन कहता है, और क्रोधान्ध होकर पास में खड़ी हुई बहिन, माता और बालक को भी मारने लगता है।

68. जुआरी मनुष्य चिन्ता से न आहार करता है, न रात–दिन नींद लेता है, न कहीं पर किसी भी वस्तु से प्रेम करता है, किन्तु निरन्तर चिन्तातुर रहताहै।

69. जूआ खेलने में उक्त अनेक भयानक दोष जान करके दर्शन गुण को धारण करने वाले अर्थात् दर्शन प्रतिमायुक्त उत्तम पुरुष को जूआ का नित्य ही त्याग करना चाहिये।

मद्यदोष–वर्णन

मज्जेण णरो अवसो कुणेइ कम्माणि णिंदणिज्जाइं।
इहलोए परलोए अणुहवइ अणंतयं दुक्खं ।। 70।।

अइलंघिओ विचिट्ठो पडेइ रत्थाययंगणे मत्तो।
पडियस्स सारमेया वयणं विलिहंति जिब्भाए।। 71।।

उच्चारं पस्सवणं तत्थेव कुणति तो समुल्लवइ।
पडिओ वि सुरां मिट्ठो पुणो वि मे देइ मूढ़मई।। 72।।

जं किंवि तस्स दव्वं अजाणमाणस्स हिप्पइ परेहिं।
लहिऊण किंचि सण्णं इदो तदो धावइ खलंतो।। 73।।

जेणज्ज मज्झ दव्वं गहियं दुट्ठेण से जमो कुद्धो।
कहिं जाइ सो जिवंतो सीसं छिंदामि खग्गेण।। 74।।

एवं सो गज्जंतो कुविओ गंतूण मंदिरं णिययं।
घित्तूण लउडि सहसा रुट्ठो भंडाइं फोडेइ।। 75।।

णिययं पि सुयं बहिणिं अणिच्छमाणं बला विधंसेइ।
जंपइ अजंपणिज्जं ण विजाणइ किं पि मयमत्तो।। 76।।

इय अवराइं बहुसो काउण बहूणि लज्जणिज्जाणि।
अणुबंधइ बहु पावं मज्जस्स बसंगदो संतो।। 77।।

पावेण तेण बहुसो जाइ–जरा–मरणसावयाइण्णे।
पावइ अणंतदुक्खं पडिओ संसारकंतारे।। 78।।

एवं बहुप्पयारं दोसं णऊण मज्जपाणम्मि।
मण–वयण–काय–कय–कारिदाणुमोएहिं वज्जिज्जो।। 79।।

मद्यदोष–वर्णन

70. मद्य–पान से मनुष्य उन्मत्त होकर अनेक निंदनीय कार्यों को करता है, और इसीलिए इस लोक तथा परलोक में अनन्त दुःखों को भोगता है।

71. मद्यपायी उन्मत्त मनुष्य लोक–मर्यादा का उल्लंघन कर बेसुध होकर रथ्यांगण (चौराहे) में गिर पड़ता है और इस प्रकार पड़े हुए उसके (लार बहते हुए) मुख को कुत्ते जीभ से चाटने लगते हैं।

72. उसी दशा में कुत्ते उस पर उच्चार (टट्टी) और प्रस्रवण (पेशाब) करते हैं। किन्तु वह मूढमति उसका स्वाद लेकर पड़े–पड़े ही पुनः कहता है कि सुरा (शराब) बहुत मीठी है, मुझे पीने को और दो।

73. उस बेसुध पड़े हुए मद्यपायी के पास जो कुछ द्रव्य होता है, उसे दूसरे लोग हर ले जाते हैं। पुनः कुछ संज्ञा को प्राप्त कर अर्थात् कुछ होश में आकर गिरता–पड़ता इधर–उधर दौड़ने लगता है।

74. और इस प्रकार बकता जाता है कि जिस बदमाश ने आज मेरा द्रव्य चुराया है और मुझे क्रुद्ध किया है, उसने यमराज को ही क्रुद्ध किया है, अब वह जिन्दा बच कर कहाँ जायेगा, मैं तलवार से उसका सिर काटूँगा।

75. इस प्रकार कुपित वह गरजता हुआ अपने घर जाकर लकड़ी को लेकर रूष्ट हो सहसा भांडों (बर्तनों) को फोड़ने लगता है।

76. वह अपने ही पुत्र को, बहिन को, और अन्य भी सबको–जिनको अपनी इच्छा के अनुकूल नहीं समझता है, बलात् मारने लगता है और नहीं बोलने योग्य वचनों को बकता है।

77. मद्य–पान के वश को प्राप्त हुआ वह इन उपर्युक्त कार्यों को, तथा और भी अनेक लज्जा–योग्य निर्लज्ज कार्यों को करके बहुत पाप का बंध करता है।

78. उस पाप से वह जन्म, जरा और मरण रूप श्वापदों (सिंह, व्याघ्र आदि क्रूर जानवरों से) आकीर्ण अर्थात् भरे हुए संसार रूपी कान्तार (भयानक वन) में पड़कर अनन्त दुःख को पाता है।

79. इस तरह मद्यपान में अनेक प्रकार के दोषों को जान करके मन, वचन और काय, तथा कृत, कारित और अनुमोदना से उसका त्याग करना चाहिए।

मधुदोष–वर्णन

जह मज्जं तह य महू जणयदि पावं णरस्स अइबहुयं।
असुइ व्व णिंदणिज्जं वज्जेयव्वं पयत्तेण।। 80।।

दट्ठूण असणमज्झे पडियं जइ मच्छियं पि णिट्ठिवइ।
कह मच्छियंडयाणं णिज्जासं णिग्घिणो पिबइ।। 81।।

भो भो जिब्भिंदियलुद्धयाणमच्छेरयं पलोएह।
किमि मच्छियणिज्जासं महुं पवित्तं भणंति जदो।। 82।।

लोगे वि सुप्पसिद्धं बारह गामाइ जो डहइ अदओ।
तत्तो सो अहिययरो पाविट्ठो जो महुं हणइ।। 83।।

जो अवलेहइ णिच्चं णिरयं सो जाइ णत्थि संदेहो।
एवं णाऊण फुडं वज्जेयव्वं महुं तम्हा ।। 84।।

मांसदोष–वर्णन

मंसं अमेज्झसरिसं किमिकुलभरियं दुगंधवीभच्छं।
पाएण छिवेउं जं ण तीरए तं कहं भोत्तुं।। 85।।

मंसासणेण वड्ढइ दप्पो दप्पेण मज्जमहिलसइ।
जूयं पि रमइ तो तं पि वण्णिए पाउणइ दोसे।। 86।।

लोइय सत्थम्मि वि वण्णियं जहा गयणगामिणो विप्पा।
भुवि मंसासणेण पडिया तम्हा ण पउंजए मंसं।। 87।।

मधुदोष–वर्णन

80. मद्यपान के समान मधु–सेवन भी मनुष्य के अत्यधिक पाप को उत्पन्न करता है। अशुचि (मल–मूत्र वमनादिक) के समान निंदनीय इस मधु का प्रयत्नपूर्वक त्याग करना चाहिए।

81. भोजन के मध्य में पड़ी हुई मक्खी को भी देखकर यदि मनुष्य उसे उगल देता है अर्थात् मुंह में रखे हुए ग्रास को थूक देता है तो आश्चर्य है कि वह मधुमक्खियों के अंडों के निर्दयतापूर्वक निकाले हुए घृणित रस को अर्थात् मधु को निर्दय या निर्घृण बनकर कैसे पी जाता है।

82. भो–भो लोगों, जिनेन्द्रिय–लुब्धक (लोलुपी) मनुष्य के आश्चर्य को देखो, कि लोग मक्खियों के रस स्वरूप इस मधु को कैसे पवित्र कहते हैं।

83. लोक में भी यह कहावत प्रसिद्ध है कि जो निर्दयी रह गाँवों को जलाता है उससे भी अधिक पापी वह है जो मधु–मक्खियों के छत्ते को तोड़ता है।

84. इस प्रकार के पाप–बहुल मधु को जो नित्य चाटता है– वह नरक में जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। ऐसा जानकर मधु का त्याग करना चाहिए।

मांसदोष–वर्णन

85. मांस अमेध्य अर्थात् विष्टा के समान है, कृमि अर्थात् छोटे–छोटे कीड़ों के, समूह से भरा हुआ हैं, दुर्गन्धियुक्त है, वीभत्स है और पैर से भी छूने योग्य नहीं है, तो फिर भला वह मांस खाने के लिए योग्य कैसे हो सकता है।

86. मांस खाने से दर्प बढ़ता है, दर्प से वह शराब पीने की इच्छा करता है और इसी से वह जूआ भी खेलता है। इस प्रकार वह प्रायः ऊपर वर्णन किये गये सभी दोषों को प्राप्त होता है।

87. लौकिक शास्त्र में भी ऐसा वर्णन किया गया है कि गगनगामी अर्थात् आकाश में चलने वाले ब्राह्मण भी मांस के खाने से पृथ्वी पर गिर पड़े। इसलिए मांस का उपयोग नहीं करना चाहिए।

चौर्यदोष–वर्णन

परदव्वहरणसीलो इह–परलोए असायबहुलाओ।
पाउणइ जायणाओ ण कयावि सुहं पलोइए।। 101।।

हरिऊण परस्स धणं चोरो परिवेवमाणसव्वंगो।
चइऊण णिययगेहं धावइ उप्पहेण संतत्तो।। 102।।

किं केण वि दिट्ठो हं ण वेत्ति हियएण धगधगंतेण।
ल्हुक्कइ पलाइ पखलइ णिद्दं ण लहेइ भयविट्ठो।। 103।।

ण गणेइ माय–वप्पं गुरु–मित्तं सामिणं तवस्सिं वा।
पबलेण हरइ छलेण किंचिण्णं किंपि जं तेसिं।। 104।।

लज्जा तहाभिमाणं जस–सीलविणासमादणासं च।
परलोयभयं चोरो अगणंतो साहसं कुणइ।। 105।।

हरमाणो परदव्वं दट्ठूणारक्खिएहिं तो सहसा।
रज्जूहिं बंधिऊणं घिप्पइ सो मोरबंधेण।। 106।।

हिंडाविज्जइ टिंटे रत्थासु चढाविऊण खरपुट्ठिं।
वित्थारिज्जइ चोरो एसो त्ति जणस्स मज्झम्मि।। 107।।

अण्णो वि परस्स धणं जो हरइ सो एरिसं फलं लहइ।
एवं भणिऊण पुणो णिज्जइ पुर–बाहिरे तुरियं।। 108।।

णेत्तुद्धारं अह पाणि–पायगहणं णिसुंभणं अहवा।
जीवंतस्स वि सूलावारोहणं कीरइ खलेहिं।। 109।।

एवं पिच्छंता वि हु परदव्वं चोरियाइ गेण्हंति।
ण मुणंति किं पि सहियं पेच्छह हो मोह माहप्पं।। 110।।

परलोए वि य चोरो चउगइ–संसार–सायर–निमण्णो।
पावइ दुक्खमणंतं तेयं परिवज्जए तम्हा।। 111।।

चौर्य दोष–वर्णन

101. पराये द्रव्य को हरने वाला, अर्थात् चोरी करने वाला मनुष्य इस लोक और परलोक में असाता–बहुत, अर्थात् प्रचुर दुःखों से भरी हुई अनेकों यातनाओं को पाता है और कभी भी सुख को नहीं देखता है।

102. पराये धन को हरकर भय–भीत हुआ चोर थर–थर काँपता है और अपने घर को छोड़कर संतप्त होता हुआ वह उत्पथ अर्थात् कुमार्ग से इधर–उधर भागता फिरता है।

103. क्या किसी ने मुझे देखा है, अथवा नहीं देखा है, इस प्रकार धक्–धक् करते हुए हृदय से कभी वह चोर लुकता–छिपता है, कभी कहीं भागता है।

104. चोर अपने माता–पिता, गुरु, मित्र, स्वामी और तपस्वी को भी कुछ नहीं गिनता, प्रत्युत् जो कुछ भी उनके पास होता है, उसे भी बलात् या छल से हर लेता है।

105. चोर लज्जा, अभिमान, यश और शील के विनाश को, आत्मा के विनाश को और परलोक के भय को नहीं गिनता हुआ चोरी करने का साहस करता है।

106. चोर को पराया द्रव्य हरते हुए देखकर आरक्षक (पहरेदार) आदिक रस्सियों से बाँधकर, मोरबन्ध से अर्थात् कमर की ओर हाथ बाँधकर पकड़ लेते हैं।

107. और फिर उसे टिंटा अर्थात् जुआखाने या गलियों में घुमाते हैं। और गधे की पीठ पर चढ़ाकर 'यह चोर है' ऐसा लोगों के बीच में घोषित कर उसकी बदनामी करते हैं।

108. और भी जो कोई मनुष्य दूसरे का धन हरता है, वह इस प्रकार के फल को पाता है, ऐसा कहकर पुनः उसे तुरन्त नगर के बाहर ले जाते हैं।

109. वहाँ ले जाकर खलजन उनकी आँखे निकाल लेते हैं, अथवा हाथ–पैर काट डालते हैं, अथवा जीता हुआ ही उसे शूली पर चढ़ा देते हैं।

110. इस प्रकार के इहलौकिक दुष्फलों को देखते हुए भी लोग चोरी से पराए धन को ग्रहण करते हैं और अपने हित को कुछ भी नहीं समझते हैं। यह बड़े आश्चर्य की बात है। हे भव्यो ! मोह के माहात्म्य को देखों।

111. परलोक में भी चोर चतुर्गतिरूप संसार–सागर में निमग्न होता हुआ अनन्त दुःख को पाता है, इसलिए चोरी का त्याग करना चाहिए।

✦✦✦

समय : 1.30 घंटा

बाहुबली प्राकृत विद्यापीठ (रजि.)

राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन एवं संशोधन संस्थान

श्री धवलतीर्थं, श्रवणबेलगोला - 573135 (कर्नाटक)

पूर्णांक 50	प्राप्तांक

प्राकृत उपाधिपत्र परीक्षा, वर्ष - 2019-20

प्रथम प्रश्नपत्र - प्राकृत भाषा साहित्य एवं धर्म

विद्यार्थी का नाम________________________________

स्थान ____________________ केन्द्र____________________

I. निम्नलिखित में सही (✓) या गलत (X) का निशान लगाए- 5X1=5

1. मध्ययुग में प्राकृत के प्रमुख तीन रुप प्राप्त होते हैं। ( )
2. प्राकृत के भाषा प्रयोग एवं काल की दृष्टि से चार भेद किये गये हैं। ( )
3. दशवैकालिकसूत्र का रचानाकार कार्तिकेय है। ( )
4. विद्युत्थप्रभा के पति का नाम जितशत्रु है। ( )
5. आचार्य नेमिचन्द्र जैन सिद्धांत के बहुश्रुत विद्वान थे। ( )

II. निम्नलिखित कथनों के सही विकल्प चुनकर वह अक्षर कोष्ठक में अंकित करें- 5X1=5

1. प्राकृत के भाषा प्रयोग एवं काल की दृष्टि से कितने भेद किये गये है -

   अ) चार आ) तीन इ) पांच ई) दस ☐

2. आर्ष प्राकृत इस युग मे आता है -

   अ) आदि युग आ) मध्य युग इ) अपभ्रंश ई) कलि युग ☐

3. द्वादशांग मे सूत्रकृतांग का स्थान यह है -

   अ) एक आ) पांच इ) बारहवाँ ई) दो ☐

4. भगवती आराधना ग्रंथ का रचानाकार -

   अ) आ. नेमिचन्द्र आ) आ. कुन्दकुन्द इ) आ. शिवार्य ई) आ. धरसेन ☐

5. गुजरात प्रदेश में जैन कला का प्रमुख केन्द्र है -

   अ) खुजराहो आ) देवगढ इ) शत्रुन्जयगिरि ई) चित्तौडगढ ☐

5. आचार्य कुन्दकुन्द की कृतियों का उल्लेख करें -

VI. निम्नलिखित गाथा का संदर्भ सहित अर्थ लिखिए- 5X1=5

1. जो उण अइरत्तच्छो संचालियजीहजामलो कालो ।
   उक्कडफुकाराख भयजणओ सव्वपाणीणं ।।

   अथवा

   तरलतरंगवलच्छा बज्झंति समंतओ थ तरुमूले ।
   कविकालं विज्जंति पल्लणज्जुया थ साहासु ।।

VII. निम्न प्रश्नों के निबंधात्मक उत्तर लिखिए - 5X2=10

1. प्राकृत काव्य साहित्य का परिचय दीजिए ।
2. 'आरामसोहाकहा' कथा का संक्षिप्त सार लिखिए ।

III.अनुवाद कीजिए -

अ)निम्नलिखित प्राकृत वाक्यों का हिन्दी में अनुवाद कीजिए - 5X1=5

1. तिलोयपण्णत्ती ______________________
2. अट्ठवरिस ______________________
3. विज्जुपहा ______________________
4. मंतिराय ______________________
5. हालाहलमीसियाणं ______________________

आ) निम्नलिखित हिन्दी वाक्यों का प्राकृत में अनुवाद कीजिए - 5X1=5

1. भगवती आराधना ______________________
2. लीलावति कथा ______________________
3. चारों वेदों में पारंगत ______________________
4. मध्यान्ह ______________________
5. श्रवणबेलगोला ______________________

IV. निम्न लिखित प्रश्नों के एक वाक्यों में उत्तर दीजिए - 5X1=5

1 द्वादशांग में उपासकदशांग को कौनसा स्थान प्राप्त है ?

2. शूरसेन प्रदेश का जनबोली भाषा कौनसी है ?

3. कवि जयवल्लभ का ग्रंथ कौनसा है ?

4. अग्निशर्मा के पत्नी का नाम क्या है ?

5. पाटलीपुत्र के राजा का नाम क्या है ?

V. निम्न लिखित प्रश्नों के दो वाक्यों में उत्तर दीजिए - 5X2=10

1 वैदिक भाषा और प्राकृत के बारे में लिखिये -

2. मध्ययुग में आनेवाले प्राकृत के नाम लिखिये -

3. स्थानांग के बारे में लिखिये -

4. प्राकृत महाकाव्यो में किन्ही चार ग्रंथों के नाम लिखिये -

समय : 1.30 घंटा

बाहुबली प्राकृत विद्यापीठ (रजि.)
राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन एवं संशोधन संस्थान

श्री धवलतीर्थं, श्रवणबेलगोला - 573135 (कर्नाटक)

पूर्णांक 50	प्राकृत उपाधिपत्र परीक्षा, वर्ष - 2019-20	प्राप्तांक

द्वितीय प्रश्नपत्र-प्राकृत व्याकरण, शिलालेख एवं सिद्धान्त

विद्यार्थी का नाम ____________________

स्थान ____________________ केन्द्र ____________________

I. निम्नलिखित में सही (✓) या गलत (X) का निशान लगायें - 5X1=5

1. 'अम्हे अईव हसामो' यह वाक्य एकवचन है। ( )
2. 'हणीओ वित्तान्तो अत्थि' यह योग्यतासूचक कृदन्त का उदाहरण है। ( )
3. अशोक का उपाधि प्रियदर्शी। ( )
4. पंच नमस्कार मंत्र सब पापों का नाश करनेवाला है। ( )
5. वसुनन्दी श्रवाकाचार ग्रंथ में आहार दोष का भी वर्णन है। ( )

II. निम्नलिखित कथनों के सही विकल्प चुनकर वह अक्षर कोष्ठक में अंकित करें- 5X1=5

1. 'खेलामि' इस पद का अर्थ -
   अ) खेलता हूँ . आ) खेलते हो इ) खेलता है ई) खेलंगे ☐
2. 'पढन्तं मित्तं हसइ' यह इस कृदन्त का उदाहरण है -
   अ) भूतकालिक कृदन्त आ) हेत्वर्थ कृदन्त
   इ) सम्बन्ध कृदन्त ई) वर्तमान कृदन्त ☐
3. अशोक का शासन लिपि -
   अ) हिन्दी आ) कन्नड इ) प्राकृत ई) ब्राम्ही ☐
4. उत्तम कितने है -
   अ) एक आ) दो इ) तीन ई) चार ☐
5. वसुनन्दी श्रावकाचार में निम्न में से कितने विषयों का वर्णन है -
   अ) पांच आ) चार इ) सात ई) तीन ☐

III. अनुवाद कीजिए -

अ) निम्नलिखित प्राकृत वाक्यों का हिन्दी में अनुवाद कीजिए - 5X1=5

1. तुमं पातो जग्गसि ______________________
2. अम्हे अप्पं बोल्लामो ______________________
3. सो सया खेलइ ______________________
4. अहं पढिऊण खेलामि ______________________
5. सो गओ ______________________

आ) निम्नलिखित हिन्दी वाक्यों का प्राकृत में अनुवाद कीजिए - 5X1=5

1. मैं सुखपूर्वक सोता ______________________
2. तुम एक बार जीमते ______________________
3. यह बहुत हँसता है ______________________
4. मैं छात्र हूँ ______________________
5. बालक कहाँ पढता है? ______________________

IV. निम्न लिखित प्रश्नों के एक वाक्यों में उत्तर दीजिए - 5X1=5

1. 'पढिस्संतं पत्तं' यह कौनसा कृदन्त का उदाहरण है ?
2. प्राकृत में कितने कृदन्त है ?
3. 'मांस भक्षण का निषेध' शासन किसने लिखवाया ?
4. किसी एक प्राकृत सिद्धन्त ग्रन्थ का नाम लिखिए ?
5. श्रावकाचार ग्रंथ का रचानाकार कौन है ?

V. निम्न लिखित प्रश्नों के दो वाक्यों में उत्तर दीजिए - 5X2=10

1. योग्यतासूचक कृदन्त के दो उदाहरण दीजिए ।
2. लोकोपकारी कार्य शासन का सारांश लिखिये ।
3. आचार्य परमेष्ठी के मुख्य गुण लिखिये ।
4. पंच परमेष्ठीयों का नाम लिखिये ।
5. मधुदोष-वर्णन का विवरण लिखिये ।

VI. निम्नलिखित गाथाओं का संदर्भ सहित अनुवाद करो- 5X1=5

1. बालगुरुगुड्ढसेहे, गिलाणथेरे य खमणसंजुत्ता ।
   वट्टावयणा अण्णे, दुस्सीले चावि चाणित्ता ।।

अथवा

अण्णाणघोर तिमिरे, दुरंततीरम्हि हिंडमाणाणं । ।
भवियाणुज्जोययरा, उवज्झाया वरमदिं देंतु ।।

VII. निम्न लिखित प्रश्नों निबन्धात्मक उत्तर दीजिए - 5X2=10

1. जिनशासनसूत्र का सारांश लिखिये ।
2. मांसदोष-वर्णन का विवरण लिखिये ।